मूल्य

दो रुपया

प्रकाशकीय—

'हिंदुत्व' को वीर सावरकर ने जिन परिस्थितियों में लिखा उन की कहानी भी लेखक के जीवन की तरह बड़ी ही रोमांचकारी है।

वीर सावरकर को 'हिंदुत्व' लिखने का विचार तो उन दिनों हुआ था जब आप इङ्गलैंड में अपनी क्रान्तिकारी सरगर्मियों में लगे हुए थे। परन्तु पुस्तक प्रारम्भ करने से पहिले ही आप ब्रिटिश सरकार की वक्र-दृष्टि के शिकार बन गए और आप को दो जन्म के कालेपानी अर्थात् ५० वर्ष को कैद की सज़ा हुई। अब अण्डेमान की काल कोठरी में ही 'हिंदुत्व' लिखने का निश्चय किया। परन्तु प्रश्न था, कागज़ कहां से आए और कलम कहां से लें? प्रतिभाशाली बन्दी ने इस की भी राह निकाल ली। जेल की सफेदी से पुती हुई दीवारों से ही कागज़ का काम लिया गया और एक छोटे-से नुकीले पत्थर ने कलम का काम दिया। दीवार पर इतनी बारीकी से लिखने के आप अभ्यस्त हो गए कि अन्त तक आप के शिला-लेख (!) कभी भी पहरेदारों की नज़र न पड़े। इसी अनोखे कागज़ और कलम से सावरकर ने अपनी प्रसिद्ध कविता 'कमला' और सुविख्यात काव्य 'गोमान्तक' के कुछ सर्गों की रचना की और इसी कागज़-कलम से 'हिंदुत्व' की रचना का श्रीगणेश हुआ।

अब प्रश्न यह था कि 'हिंदुत्व' की रचना तो पूरी हो गई, इसे कालेपानी से बाहर कैसे भेजा जाय? उन दिनों यह तो कल्पना भी नहीं की जा सकती थी कि सावरकर कभी अण्डेमान की काल-कोठरी से जीवित बाहर निकल सकेंगे। और जेल से बाहर एक शब्द भी लिख कर भेजना मृत्यु से खेलना था, पुस्तक लिख कर भेजना तो दूर की बात है। तब सावरकर ने एक युक्ति से काम लिया। उन्होंने कालेपानी से समय समय पर मुक्त होने

वाले अपने साथियों को 'हिंदुत्व' के अलग अलग अध्याय कण्ठस्थ करा दिए। इन्हीं साथियों ने भारतवर्ष पहुंच कर 'हिंदुत्व' के कुछ विशेष अध्यायों को क्रम-बद्ध रूप दिया। यह सन् १६१६ की बात है।

परन्तु, 'हिन्दुत्व' अपने वर्तमान रूप में तब लिखा गया जब विधिना के विधान से वीर सावरकर अण्डेमान से बदलकर भारतवर्ष की जेलों में बन्द किए गए। यहां भी उन पर लिखने-लिखाने के विषय में कड़े प्रतिबन्ध थे, परन्तु उन्होंने जेल के अधिकारियों की आंखों में धूल झोंककर जेल में ही सपूर्ण पुस्तक लिखी और बड़ी युक्ति से पुस्तक का मसवदा नागपुर में प्रकाशनार्थ भेज दिया। सन् १६२४ में हिन्दुत्व' पहली बार प्रकाशित हुआ। इसमे लेखक के नाम के स्थान पर अपना नाम न देकर 'एक मरहटा द्वारा लिखित' छपा था।

'हिन्दुत्व' के प्रकाशित होने पर इसको प्रशंसा देश के एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक सभी ने मुक्त कंठ से की जिनमे स्वर्गीय लाला लाजपतराय और महामना पं० मदन मोहन मालवीय के नाम उल्लेखनीय हैं। स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्द जी ने 'हिन्दुत्व' की प्रशंसा करते हुए इसके लेखक वीर सावरकर को निम्नलिखित श्रद्धांजलि अर्पित की—

" 'हिन्दुत्व' के लेखक को भी वैदिक ऋषियों की भांति सत्य का बोध हुआ है, तभी तो हिन्दुत्व की परिभाषा करते हुए इनके हृदय मे हिन्दुत्व के मन्त्र१. का प्रकाश हो सका।"

—प्रकाशक

१. आसिन्धु सिधु-पर्यन्ता यस्य भारत-भूमिका।
पितृभूः पुण्भूश्चैव स वै हिन्दुरिति स्मृतः॥
[यह श्लोक वीर सावरकर की रचना है]

—— :o: ——

१

'नाम में क्या है, गुलाब का फूल. किसी भी नाम से पुकारें, मीठी महक देगा।" इस युक्ति से वेरोना की सुन्दरी ने अपने प्रेमी को उसके नाम बदल डालने का बहुत प्रबल आग्रह किया था। "जो नाम शरीर का कोई हिस्सा नहीं, न हाथ है, न पैर है, न मुख है, उससे इतना लगाव क्यूं ?" यह युक्ति भी बेबुनियाद नहीं मालूम होती। फिर भी दुनिया नाम की पूजा नहीं छोड़ती—हमें भी अपने नाम से प्रेम है। "हम हिन्दू हैं और हिन्दू ही रहना हमें इष्ट है।" हर हिन्दू के हृदय से यही आवाज़ निकलती है। नाम को इतना महत्व देना भले ही युक्तिसंगत न हो परन्तु निष्कारण भी नहीं है। यद्यपि किसी भी नाम का उस वस्तु से अटूट सम्बन्ध नहीं होता; एक वस्तु एक से अधिक नामों से भी पुकारी जाती है तथापि उस नाम और वस्तु के निरन्तर एक साथ प्रयोग से उन दोनों का सम्बन्ध बहुत गहरा हो जाता है और वह सूत्र जो उन जुदा २ हस्तियों को जोड़ता है इतना मजबूत हो

जाता है कि अन्त में उस वस्तु से उसके नाम को जुदा करना नामुमकिन मालूम होने लगता है। इसके अतिरिक्त उस नाम के साथ इतने संस्कार, इतनी भावनायें और स्मृतियाँ जुड़ जाती हैं कि नाम का महत्व वस्तु के महत्व से किसी क़दर भी कम नहीं रह जाता। नाम और वस्तु एकाकार हो जाते हैं। उस वस्तु के नाम-भेद से वस्तुभेद की ही प्रतीति होने लगती है। हमे निश्चय है कि वही सुन्दरी 'जो नाम में क्या है' को युक्ति पेश करती थी, कभी भी अपने प्रेम-देवता को 'रोमियो' के स्थान पर 'पेरिस' नाम से पुकारना पसन्द नहीं करेगी। उसका प्रेमी भी कभी अपनी प्रेमिका को 'जूलियट' की जगह 'रोज़लीन' या किसी भी और नाम से याद नहीं करेगा। जो माधुर्य, जो भावना 'जूलियट' नाम में है, वह और किसी नाम में नहीं आ सकती। नाम का बहुत माहात्म्य है। बहुत बार नाम की महिमा वस्तु से भी अधिक प्रतीत होने लगती है। वह नाम एक विशाल आदर्श का, महती संस्था का, सजीव प्रतिनिधि हो जाता है और उसका विकास एक जीवित शरीर के समान, जिसमें चेतना और प्राण हैं, होने लगता है। वही नाम उस वस्तु के शरीर का कोई अग अवयव न होते हुए भी सम्पूर्ण शरीर से अधिक महत्व पा जाता है। वह उस वस्तु की आत्मा बन कर उसका अधिष्ठाता बन बैठता है। उसका गौरव इतना गहरा हो जाता है कि वस्तु के नाश के साथ उसका अस्तित्व नहीं मिटता। वह कुछ अक्षय सूक्ष्म आदर्शों व अमिट संस्कारो के रूप मे सदैव के लिये अमर हो जाता है। 'जीसस' मर गया, रोम साम्राज्य नष्ट हो गया, मगर ईसा आज भी अमर है। यह

उसका नाम है जो एक 'रूह' बन कर संसार मे जीवित है। उस नाम को बदलना अब मुमकिन ही नहीं है। ईसा के सब आदर्श उसके नाम में छिपे हुए हैं। उसके आदर्शों के पुजारी अव्यक्त आदर्शों की पूजा के स्थान पर व्यक्त नाम की पूजा करते हैं। ईसा के अतिरिक्त और कोई भी नाम उन आदर्शों का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता। आप 'मेडोना' की मूर्ति के नीचे मे 'मेडोना' नाम को मिटा कर 'फ़ातिमा' लिख दीजिये, देखने वालों को मेडोना की स्मृति भी नही आएगी। उसी के नीचे फिर 'मेडोना' लिख दीजिये और लाखों को सिर नवा कर प्रणाम करते देख लीजिये। उनका मस्तक 'मेडोना' के 'मातृत्व' के आदर्शों पर झुक जायगा। यह नाम का माहात्म्य न ीं तो क्या है ? 'अयोध्या' को 'होनोलुलु' नाम देते ही 'अयोध्या' का अस्तित्व मिट जायगा, भले ही अयोध्या के मन्दिरों पर सोने के कलश चढा दीजिये। अमरीका निवासियों के दिल पर क्या गुजरेगी अगर 'वाशिंगटन' का नाम 'चंगेजखां' रख दें ? मुसलमान कभी अपने को 'यहूदी' कहलाना पसन्द करेंगे ? कभी नहीं। तब यह कहना भी कि 'नाम म क्या है' निरर्थक है। नाम मे ही तो सब कुछ है, यही कहना अधिक यथार्थ मालूम होता है।

जो नाम संसार को जीवन और स्फूर्ति देने के कारण अमर हो गये हैं—उन्हीं मे एक नाम 'हिन्दुत्व' है। हम उसी 'हिन्दुत्व' नाम के मूल तत्व और उसके महत्व की छानबीन करना चाहते हैं। इस नाम के साथ जो आदर्श, संस्कार और जो भावनाएं जुड़ गई हैं वे इतनी विशाल, इतनी सम्पन्न, इतनी समर्थ और रहस्य-

समयी होते हुए भी इतनी साफ़ ज़ाहिर हैं कि 'हिन्दुत्व' नाम की पूरी व्याख्या स्वयं एक कठिन कार्य हो गया है। अधिक नहीं तो ४० सदियों से इस नाम के साथ विविध संस्कार जुड़ते गये हैं। बड़े २ महात्मा, अमर कवि, तत्वदर्शी, स्मृतिकार और अतुल पराक्रमी इसी नाम के लिये जिये व मरे हैं। उनके कारनामों का इतिहास इस नाम के साथ जुड़ गया है। 'हिन्दुत्व' नाम का आज जो अर्थ है—वह समस्त हिन्दू जाति के असंख्य कार्यों का परिणाम है। 'हिन्दुत्व' शब्द अब एक नाम नहीं बल्कि इतिहास बन चुका है। यह भूल है कि इस नाम के साथ केवल हिन्दुओं के धार्मिक व दार्शनिक विचारों का इतिहास जुड़ा हुआ है। उसे तो 'हिन्दूवाद' भी कह सकते हैं। 'हिन्दूवाद' तो हिन्दुत्व का अंशमात्र है। जब तक 'हिन्दुत्व' शब्द से क्या अभिप्रेत है, यह स्पष्ट नहीं होगा तब तक 'हिन्दूवाद' शब्द भी अस्पष्ट और दुर्बोध रहेगा। इन दोनों परिभाषाओं के भेद न कर सकने के कारण ही हमारी कुछ सजातीय कौमों में—जिन्हों ने हिन्दू संस्कृति से अनमोल रत्न पाये हैं और जो अपनी उन्नति के लिये हिन्दू संस्कृति की ऋणी हैं, बहुत संशय व संदेह पैदा हो गये हैं 'हिंदुत्व' और 'हिन्दूवाद' में क्या भेद है, इसका पूरा खुलासा हम उत्तरोत्तर करते जाएंगे मगर यहां इतना ही कहना पर्याप्त है कि ये दोनों शब्द एक ही अर्थ के द्योतक नहीं हैं। 'इज़्म' (वाद) शब्द का प्रयोग प्राय. वहीं होता है जहां धर्म व अध्यात्म सम्बन्धी विचार-श्रेणी को प्रगट करना हो। 'हिंदुत्व' की व्याख्या करते हुए हम केवल धर्म की सीमा में अपने प्रयत्न को बांधना नहीं चाहते। 'हिंदुत्व' शब्द हिन्दू जाति की सर्वमुखी

प्रगतियों—विचारों और कार्यों— का प्रतिनिधि है। अतः हिन्दुत्व की व्याख्या से पूर्व हमें 'हिंदू' नाम के अन्तर्गत भावों को खोल कर रखना पडेगा और यह भी प्रगट करना होगा कि 'हिन्दू' शब्द का स्रोत क्या है ? यह शब्द लाखो व्यक्तियों के हृदय पर कैसे अंकित हो गया है ? और इस शब्द पर उनकी इतनी अटूट श्रद्धा कैसे जुड गयी है ? स्मरण रहे— हमारा प्रयत्न उस संकीर्ण शब्द 'हिंदूवाद' की व्याख्या के लिये नहीं है जो केवल 'पथ' का द्योतक है। हम अपने प्रयत्न मे कितना सफल होते हैं—यह उत्तरोत्तर प्रकट होगा।

२

आर्य लोग कब सिंधु नदी के तट पर आए और कब उन्होंने सर्वप्रथम सिन्धु नदी के तट पर यज्ञाग्नि प्रदीप्त की, यह कहना अभी बहुत कठिन है। पुरातत्त्वान्वेषी अभी तक उस पुण्य मुहूर्त को निश्चित तिथि की खोज नहीं कर पाये हैं। तथापि यह सत्य निर्विवाद रूप से सिद्ध हो चुका है कि जब मिश्र और बेबीलोनिया ने अपनी विशाल सभ्यता की इमारत खड़ी की थी उससे बहुत पूर्व सिंधु नदी का तट आर्यों के वैदिक गायनों से गूंज रहा था और यज्ञ की पवित्र अग्नि के धूए से निरन्तर सुवासित हो रहा था। उनके अतुल साहस और उनके विचारों की महानता ने प्रगट कर दिया था कि ये एक अमर संस्कृति की नींव रखने वाले हैं। अपने पड़ोसी 'पर्शियन्स' से अलहदा होने के बाद वे सिन्धु नदी को पार कर आगे बढ़े और सात नदियों तक बढ़ते गये। उन्होंने इस देश का नाम ही सप्त-सिंधु' नहीं रखा बल्कि इसी नाम से एक नयी राष्ट्रीयता को जन्म दे दिया जिसका

वर्णन सबसे प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेद में भी आता है। 'सप्त-सिंधु' नाम इस देश की सात नदियों के कारण रखा गया था और इसी नाम से 'वेदकालीन भारत' को स्मरण किया जाता है । प्राचीन आर्यों का नदियों के प्रति विशेष प्रेम अकारण नहीं था। कृषि ही उनकी आजीविका थी, इस लिये नदियों के प्रति उनकी श्रद्धा स्वाभाविक थी। उन नदियों के प्रति श्रद्धा मात्र से प्रेरित होकर ही उन्होंने इस देश का नाम 'सप्त-सिंधु' रखा। यही नाम उनकी एक राष्ट्रीय और एक संस्कृति का द्योतक था।

इमा आप ।शवतमा इमा राष्ट्रस्य भेषजीः ।

इमा राष्ट्रस्य वर्धनीरिमा राष्ट्रभृतोऽमः ॥

[अर्थात्—ये नदियां अत्यन्त कल्याणकारी हैं । ये राष्ट्र को जन्म देने वाली और राष्ट्र का विकास करने वाली हैं । इनके बल पर राष्ट्र अवस्थित है।]

इसका यह अभिप्राय नहीं कि आर्यों के रास्ते में केवल सात नदियां ही आयीं। आर्य लोग उन प्रथमागत सात नदियों को पार कर आगे भी बढते गये और उनके रास्ते मे उन्हीं सात नदियों के समान और भी नदियां आई, वे उनके तट पर भी बसे; किंतु जो सात नदियां उनकी यात्रा में प्रथम आयी थीं और जिनके तट पर वे सर्वप्रथम आबाद हुए थे, जहां उनकी राष्ट्रीयता और संस्कृति ने सर्वप्रथम विकास पाया था उनके प्रति कृतज्ञता भाव ने उन्हे इस देश का नाम 'सप्त-सिंधु' रखने को ही प्रेरित किया । आज भी उन सात नदियों को प्रत्येक हिंदू पवित्र मानता है । और उनके साथ हिंदू भाग का आध्यात्मिक सम्बन्ध हो गया है। उनका जल न केवल शरीर बल्कि आत्मा को भी पवित्र करने वाला माना जाता है।

इमं मे गंगे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तेमं सचता परुष्ण्या ।
असिक्न्यामरुद्वृधे वितस्तयार्जीकीये श्रुणुह्या सुषोमया ॥
गगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ।
नर्मदे सिंधु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधि कुरु ॥

इस मंत्र में सातों नदियों का उल्लेख है।

आर्य लोग उसी समय से 'सिन्धु' कहलाने लगे। वे केवल आपस मे ही इस नाम से नही पुकारते थे बल्कि हमारे पास इस बात के निश्चित् प्रमाण हैं कि पड़ोस क राष्ट्र भी उन्हे इसी नाम से जानते थे। कम से कम पर्शिया मे वे इसी नाम से प्रसिद्ध थे। संस्कृत भाषा के 'स' अक्षर का प्राकृत भाषा मे 'ह' के समान उच्चारण होता है। 'सप्त' का उच्चारण प्राकृत मे 'हप्त' होता है। जिसे हम 'हप्ता' कहते हैं युरोप में हेपटार्की कहलाता है। संस्कृत का शब्द केसरो हिन्दी मे 'केहरी' कहलाता है। 'सरस्वती' को पर्शियन भाषा में 'हरह्वती' और 'असुर' को 'अहुर' कहते हैं। 'सप्तसिन्धु' शब्द पर्शिया की प्राचीन पुस्तक 'अवस्ता' मे हप्त-हिन्दु' लिखा है। इस प्रकार हम देखते हैं कि जिस दिन से हमारा इतिहास मिलता है, हम 'सिन्धु' व 'हिन्दु' नाम से प्रसिद्ध हैं। हमारे पुराण भी इस के साक्षी हैं। भविष्य पुराण मे, बहुत सी म्लेच्छ भाषाओं का मूल स्रोत संस्कृत ही है, इस बात का पुष्टि करते हुए निम्न वाक्य दिया गया है:—

संस्कृतस्यैव वाणी तु भारत वर्षमुह्यताम्।
अन्ये खंडे गता सैव म्लेच्छाह्यानंदिनोऽभवन्।
पितृ पैतर भ्राता च बादरः पतिरेव च।
सेति सा यावनी भाषा ह्यश्वश्चास्यस्तथा पुनः।

जानुस्थाने जैनशब्दः सप्तसिंधुस्तथैव च।
हप्तहिंन्दुर्यावनी च पुनर्ज्ञेया गुरुण्डिका॥
(प्रतिसर्गपर्व अ० ५)

अर्थात् संस्कृत का विकास भारतवर्ष में हुआ। अन्य देशों मे उसी संस्कृत का म्लेच्छ भाषाओं मे विकार हो गया। पिता को पैतर, भ्राता को बादर, जानु को जैन, सप्तसिन्धु को हप्तहिन्दू नाम से यावनी भाषा में पुकारने लगे।

यह बात निर्विवाद है कि पर्शिया निवासी वैदिक आर्यों को 'हिन्दू' नाम से पुकारते थे। पर्शिया की तरह अन्य देशों के निवासी भी हमें किसी और नाम से नही जानते थे। हम परदेसियों को प्राय: उसी नाम से पुकारते हैं जिस नाम से उन परदेसियों को वह लोग पुकारते हैं जिनको मध्यस्थता से हमे उन का परिचय मिलता है। अत: हम यह परिणाम निकाल सकते हैं कि पर्शिया के अतिरिक्त अन्य देशों में भी हम हिन्दू नाम से ही मशहूर थे। जिन स्थानों पर आदिम आर्यो का निवास हुआ उनके आदि निवासी भी उन्हे 'हिन्दू' नाम से पुकारते थे बाद मे जब संस्कृत से प्राकृत भाषा का जन्म हुआ, और आदि निवासियों की अधिक संख्या ने उस भाषा को अपनाया, तब भी इस बात के सबूत मिलते हैं कि वे परस्पर हिन्दू नाम से ही पुकारते थे। इन प्रमाणों से यह सत्य निर्विवाद है कि हमारे पूर्व पुरुषों ने हिंदू नाम को आदिकाल से ही अपना लिया था और संसार के अन्य राष्ट्र भी हमारे देश को 'सप्तसिंधु' व 'हप्तहिंदु' और हमे 'सिंधु' व 'हिंदू'

नाम से जानते थे।

अभी तक हम लेखबद्ध प्रमाणों के आधार पर ही अपने कथन की पुष्टि करते आए हैं। अब हम उन प्रमाणों के आश्रित अनुमान और युक्तियों के बल पर अपने कथन को सिद्ध करेंगे। आर्यों के आदि निवास के सम्बन्ध मे हमने अभी कोई अपना मन्तव्य प्रकट नही किया है। उस विवाद में हम पड़ते भी नहीं। हम उनके प्रवास की उसी कल्पना को सत्य मान लेते हैं जो प्राय सब इतिहासकार मानते हैं। उसे मान लेने के बाद भी जिस प्रश्न का उत्तर हम चाहते हैं वह यह है कि सप्त सिंधु' में प्रवेश करने के बाद उन्होंने इस देश की वस्तुओं को जिन नामों से पुकारना प्रारम्भ किया वह किस आधार पर ? क्या उन्होंने सब नामों की रचना अपनी भाषा से ही की ? क्या यह सच नहीं कि जब कोई जाति किसी देश पर विजय पाकर वहां प्रवेश करती है तो उस देश की वस्तुओं का नामकरण वहीं के पूर्व प्रचलित नामो के आधार पर ही किया जाता है। उन प्राचीन नामों को उसी रूप में न भी स्वीकार किया जाय तो भी नये नाम और प्राचीन नाम में कुछ समानता का ध्यान अवश्य रखा जाता है। यथासम्भव उन्हीं पुराने नामों को विजेता की भापा में परिवर्तन कर लिया जाता है। नये नामों की सृष्टि नहीं की जाती। आर्यों के प्रवेश से पूर्व इस देश मे जो आदि निवासी थे उनकी भी कोई भाषा अवश्य थी। उनकी भाषा में भी इस देश का कोई नाम अवश्य होगा। उन आदि निवासियों मे से कुछ ने आर्यों के प्रवेश का विरोध किया और कुछ ने सहायता दी। कुछ ऐसे भी थे जिन्हों ने आर्यों को प्रवेश में पूरी सहायता दी

और उन्हों ने आर्यों को यहां की प्रचलित प्रथाओं व परिभाषाओं से परिचित करवाया। आर्यों ने उन आदि निवासियों को भिन्न नामों से पुकारा है। "विद्याधराप्सरोयक्षरक्षोगंधर्वकिन्नरा" श्लोक उन अनेक नामों का द्योतक है। ये सब आर्यों के शत्रु नहीं थे। आर्य पुस्तकों में इनकी प्रशंसा भी आई है। अतः बहुत सम्भव है कि आर्यों ने नये नामों की रचना पूर्व-प्रचलित नामों के आधार पर ही की हो। आर्यों को आदि निवासियों से ऐसी घृणा नहीं थी कि वे उनके नामों को अपनाने में अपना अपमान समझते। बहुत मुमकिन यही है कि आर्यों ने उन्हीं नामों को संस्कृत रूप दे दिया और अपना लिया। आर्यों की इस प्रवृत्ति के हमारे पास और भी उदाहरण है—यथा—शकटकटा, मलय, मिलिन्द, अलसंदा (अलग्जन्ड्रिया), सुलूव (सेल्यूकस) आदि। यह सच हो तो मानना पडेगा कि हिन्दू नाम आर्यों से भी पूर्व का है। आदि निवासी भी अपने को 'हिंदू' कहते थे। सस्कृत मे 'ह' के 'स' हो जाने के कारण आर्य लोग इसे 'सिंधु' कहने लगे। मूल नाम 'हिंदू' ही है। 'हिंदू' शब्द को अर्वाचीन मानने वालों के पास इस युक्ति का कोई उत्तर नहीं है। इस कल्पना के आधार पर हम यह परिणाम निकाल सकते हैं कि जिस काल का हमें कोई इतिहास भी नहीं मिलता उस काल मे भी हम हिंदू ही कहलाते थे। हिंदुस्तान का इतिहास आर्यों के प्रवेश के बाद से मिलता है—मगर, बहुत सम्भावना है कि इस काल से पूर्व भी हम 'हिंदू' नाम से प्रख्यात थे।

वैदिक काल के 'हिंदू' व 'सिन्धु' साहसी और शक्तिशाली थे। उनके लिए यह मुमकिन नहीं था कि वे 'पंचनद' (पंजाब)

की दीवारों तक ही अपने को कैद कर रखते। उनका फैलाव होना स्वाभाविक था। पंचनद के बाहिर सैंकड़ों मील उपजाऊ ज़मीन पडी थी और किसी वीर और साहसी जाति से अपनाये जाने की इन्तज़ार कर रही थी। हिंदुओं के दल के दल अपने आदि निवास से निकल कर इस जमीन पर फैल गये। उनके दिल मे एक महान उद्देश्य की पूर्त्ति का उत्साह था। अग्नि को साक्षी मान कर वे आगे बढ़े और ग़ैर-आबाद मुल्क को बहुत जल्दी हरी भरी खेतियों से भर दिया, जंगल काट डाले, शहरों को आबाद किया। जो ज़मीन खण्डहर की शक्ल मे बियाबान पडी थी वही उन शूरवीर हाथों की प्रेरणा पाकर सजीव और सम्पन्न हो उठी।

हिन्दुओं के इस विस्तार के साथ उनका केन्द्रीय संगठन कुछ कमजोर हो गया। अलहदा हुए २ दलों की परिस्थितियां इतनी विभिन्न हो गयीं कि उन दलों को अपना पृथक संगठन करना पड़ा और बहुत अंशों मे पृथक आचार-व्यवहार की योजना भी करनी पडी। समय के साथ यह भेद बढ़ता गया। उनके पृथक उपनिवेशों की दूरी भी बढ़ती गई। उन उपनिवेशों ने अपनी जुदा २ हस्तियां क़ायम कर लीं। जुदा २ राज्य बन गये। यहा तक कि अपनी प्राचीन शृंखला से ये राज्य बिल्कुल भिन्न हो गये। संस्कृति मे भेद नही आया, मगर राजनीति की दृष्टि से ये उपनिवेश बिलकुल अलहदा हो गये। 'कुरु', 'मगध', 'काशी', 'विदेह' आदि के दलों ने अपने २ राज्यों की पृथक नींव डाल ली। कुछ काल इन राज्यों का अस्तित्व पृथक ही रहा। किन्तु जब आर्यों के सब से बड़े राजा अयोध्या के सम्राट् श्री रामचन्द्र ने लंका पर

विजय पाई और हिमालय से कुमारी अन्तरीप तक समस्त पृथ्वी पर अपना आधिपत्य जमा लिया तब फिर सब राज्य एवं चक्रवर्त्ती आर्य राज्य में शामिल हो गए। वह दिन हिंदू इतिहास में सदा अमर रहेगा, जब अश्वमेध यज्ञ के अपराजित अश्व ने समस्त भारत की परिक्रमा करके अयोध्या मे प्रवेश किया और सम्राट् रामचन्द्र के सामने सार्वभौम राज्य के चक्रवर्त्ती सम्राट् होने के कारण विभिन्न राज्यों के राजा अपनी अधीनता प्रकट करने आए, वह दिन हिन्दुत्व के लिये स्वर्णीय दिन था। उस दिन न केवल विशुद्ध आर्य रक्त के राजा ही अपने चक्रवर्ती राजा के सम्मुख पेश हुऐ वल्कि हनुमान, सुग्रीव, विभीषण भी, जो कि मध्य भारत और सुदूर दक्षिण से आये थे, हिन्दूराज्य के झण्डे के नीचे आये। वह हिन्दुओं का सच्चा राष्ट्रीय दिन था क्योंकि उस दिन आर्य व अनार्य सभी एक राष्ट्र के नीचे आये थे और सब ने मिलकर एकराष्ट्रीयता को जन्म दिया था। उस दिन हिन्दुओं का, हिन्दुस्तान को एक राष्ट्र बनाने का प्रयत्न सफल हुआ था। वह प्रयत्न उसी दिन से जारी था जब प्रथम आर्यों का दल सिन्धु नदी के तट पर आया था। सदियों की कोशिश उस दिन कामयाब हुई थी। आज भी हम हिन्दुस्तान में जो राष्ट्रीयता की भावना दिखलाई देती है उसका बीजारोपण भी उसी दिन हुआ था। वही भावना आजतक हिन्दू मात्र मे जाग्रत है। उसी दिन से सब हिन्दू एक झण्डे के नीचे आए थे। उसी भावना को लेकर सम्राटों का उदय हुआ और क्षय हुआ। मगर भावना बनी रही।

एक जीवन्त कल्पना को अगर कोई व्यापक परिभाषा

मिल जाये जो उसके गौरव को व्यक्त करने में पूरी समर्थ हो तो निश्चय ही कल्पना की शक्ति निरन्तर बढ़ती जाती है। 'आयावर्त्त' और 'ब्रह्मवर्त्त' परिभाषायें उस विशाल कल्पना के अनुकूल नहीं थीं। सिन्धुनदी से समुद्र पर्यन्त विराट् साम्राज्य को एक राष्ट्र में बान्धने की कल्पना इतनी विशाल थी कि 'आयावर्त्त' और 'ब्रह्मवर्त्त' नाम बहुत संकीर्ण मालूम होते थे। प्राचीन लेखकों के अनुसार 'आर्यावर्त्त' केवल हिमालय और विन्ध्याचल पर्वतों के मध्य स्थित भूभाग को कहते थे। 'आर्यावर्त्तः पुण्यभूमिर्मध्यम् विन्ध्यहिमालयो।' यह नाम आर्यों के विस्तार के उस काल तक ही अनुकूल था जब तक उनका विस्तार विन्ध्याचल तक हुआ था। इस नाम को जन्म देने वालों की यह कल्पना नहीं थी कि किसी दिन आर्यों का विस्तार विन्ध्याचल के भी सैंकड़ों योजन दूर तक हो जाएगा। जब विशुद्ध आर्यरक्त के अतिरिक्त जातियां भी आर्यराष्ट्र में शामिल होने लगीं तब इस 'आयेवर्त्त' नाम की संकीर्णता और भी तीव्र रूप से प्रकट हो गई। आर्यों के इस नये विस्तार के साथ नये नाम की आवश्यकता होने लगी। उस नई आवश्यकता की पूर्त्ति तब हुई जब भरत वंश के राजा ने इस विशाल साम्राज्य को 'भारत' नाम दिया। भरत कौन था? वह वैदिक काल का भरत था या जैन काल का? इस विवाद में न पड़कर हम इतना कहना चाहते हैं कि 'भारत' नाम न केवल उत्तरखण्ड के आर्यों को स्वीकार था परन्तु 'दक्षिणापथ' के लोगों को भी था। वे भी 'भारत' को अपनी मातृभूमि मानने लगे थे और उसे ही अपनी संस्कृति का केन्द्र स्वीकार कर चुके थे। आर्यों के 'दक्षिणापथ' विस्तार के साथ 'सप्तसिन्धु' या 'आर्यावर्त' नाम

की अपेक्षा 'भरत खण्ड' नाम राजनीतिक दृष्टि से अधिक अनुकूल हो गया। हिमालय से लेकर समुद्र पर्यन्त समस्त भूभाग को 'भरतखण्ड' नाम मिल गया। विष्णुपुराण में उसी भरतखण्ड का बयान करते हुए लिखा है:—

"उत्तरे यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्।
वर्षं तद्भारतं नाम भारती यत्र संतति.॥"

अर्थात् जो भूमि समुद्र के उत्तर की ओर तथा हिमालय से दक्षिण की ओर फैली हुई है वही भारतवर्ष है और उसकी सन्तान को 'भारतीय' कहते हैं।

'भारतवर्ष' नामकरण होने के बाद भी 'सिन्धु' व 'हिंदू' नाम के प्रति हमारी श्रद्धा कम नहीं हुई। जिस नाम के साथ हमारी राष्ट्रीयता ने जन्म लिया था और जिसे मां के दूध पीने के साथ सुना था उसे भला कब भूल सकते थे। हमने अपनी राष्ट्रीय सुविधा के लिये अपनी मातृभूमि को 'भारतवर्ष' नाम अवश्य दे दिया, किंतु हमारे पड़ोसी राष्ट्र हमे 'सिंधु' व 'हिंदू' नाम से याद करते रहे। और 'सिंधु-राष्ट्र' ही हमारे राष्ट्र के नाम के रूप में उनकी ज़बान पर रहा। संस्कृत साहित्य मे 'सिंधुसौवीर' नाम को बड़े सम्मान से लिया जाता है, महाभारत के युद्ध के वर्णन में भी 'सिंधुसौवीर' के राजा का भारत से घनिष्ट सम्बंध बतलाया गया है। यद्यपि 'सिंधुराष्ट्र' की भौगोलिक सीमा मे कमी-वेशी होती रही, किंतु उस सीमान्तर्गत लोगों की भाषा एक ही रही। अब भी उनकी भाषाओं का मूल एक ही है। जिस भूभाग पर सर्वप्रथम

आर्यों की आबादी हुई थी उसे अभी तक 'सिंध' कहते हैं और उसकी भाषा को 'सिन्धी'। उस भाषा को बोलने वाले सभी सिन्धु व 'हिंदू' कहलाते थे। 'भारतखंड' नाम भी एक समय इतना प्रचलित हो गया था कि सब हिन्दू अपने देश को 'भारत' कहने लगे थे और इसके पूर्व प्रचलित नाम को भूल गये थे। किन्तु यह नाम केवल राष्ट्रीय संगठन की सहूलियत के लिये अपने देश मे ही प्रचलित था। उस समय भी हमारे पड़ोसी व दूरस्थ देश हमे 'भारत' नाम से नहीं, अपितु 'सिंधु' नाम से ही जानते थे। पार्शियन्स, यहूदी और ग्रीक लोग हमें 'भारत' नाम की मशहूरी के बाद भी 'सिंधु' व 'हिन्दू' नाम से ही पुकारते थे। पर्शियन्स हमें 'हिंदू' नाम से जानते थे, ग्रीक लोगो ने 'ह्' को मिटाकर केवल 'इन्दु' व 'इन्दोस' नाम रख लिया था। युरोप के लोगों ने भी ग्रीक का अनुसरण किया और 'इन्दु' से बिगाड़ कर 'इंडिया' नाम रख लिया। नाम मे इतना विकार आ जाना कुछ अस्वाभाविक नहीं था। विदेशियों की ज़बान पर असल नाम चढ़ना कुछ कठिन होता है। हेनसाग बहुत अरसे तक हिंदुस्तान में रहा। फिर भी वह 'सिंधु' नाम का ठीक उच्चारण नहीं कर पाता था। उसने सिन्धु को 'शिंतु' व हिंतु' नाम से लिखा है। यह बात सचमुच बहुत आश्चर्य की है कि यद्यपि हम अपने देश को बहुत काल तक 'भारत' नाम से पुकारते रहे फिर भी किसी भी विदेशी साहित्य मे हमारे देश को 'भारत' नाम से नही लिखा गया। आज भी समस्त संसार के लोग हमे 'हिंदू' नाम से ही जानते हैं और हमारे देश को 'हिंदुस्तान' नाम से। वेद कालीन आदि आर्यों द्वारा रखा गया नाम आज तक प्रचलित है.

उस नाम को बदलने की सब कोशिशें बेकार गईं।

किसी के नाम का निश्चय उसकी पसन्द से नहीं बल्कि औरों की पसन्द से होता है। जिस नाम से वह अपने को जाहिर करना चाहता है वह नाम नहीं—बल्कि जिस नाम से और लोग उसे पुकारते हैं वही नाम प्रचलित होता है। नामकरण का अभिप्राय ही औरों को सुविधा देना है। स्वयं को तो नाम की जरूरत ही नहीं, जरूरत ही दूसरों को होती है। अगर संसार यह चाहता है कि कोई विद्वान् 'अष्टावक्र' कहलाए या 'मुल्ला दोप्याजा' कहलाए तो वह वही कहलायेगा—वह वैसा कहलाना पसन्द करे चाहे न करे।

विदेशी राष्ट्र भी हमें 'भारत' न कह कर 'सिंधु ही कहते रहे। केवल इस बात का प्रमाण मिलता है कि पर्शियन लोग अफ़गानिस्तान को 'श्वेत भारत' कहते थे।

जब संसार किसी को उस नाम से पुकारे जो नाम वाले को अप्रिय न हो तब उस नाम के अतिरिक्त दूसरा नाम रखना और भी कठिन हो जाता है और अगर वह नाम उसके प्राचीन गौरव का स्मरण दिलाने वाला हो तब तो उस नाम का स्थानापन्न रखना असम्भव ही समझिये। हमें भी 'सिंधु' नाम अप्रिय नहीं था और यही नाम हमारी प्राचीन स्मृतियों को जगाने वाला था, इसलिये हमारी इच्छा होते हुए भी हमारे देश का नाम 'भरतखण्ड' नहीं पड़ा और हमारा नाम भी 'भारतीय' न होकर 'सिंधु' ही रहा।

———

३

बौद्धकाल से पूर्व भी भारत का विदेशों से सम्बन्ध था। वह सम्बन्ध भारत के लिये अभिमान का कारण बन चुका था। इसका प्रमाण हमें मनुस्मृति मे मिलता है—

'एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मन।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्या सर्वमानवा ॥ (मनु०)

अर्थात्—इस देश के विद्वानों के समीप आकर ही पृथ्वी के सब मनुष्यों ने जीवन के आचार-व्यवहार की शिक्षा पाई है।

मनुस्मृति का यह श्लोक बौद्धकाल से पूर्व ही भारत के जगद्गुरु होने का स्पष्ट प्रमाण देता है। हम बौद्धकाल के बाद की ही घटनाओं को लेते हैं क्योंकि उस समय की घटनाएं इतिहास के पृष्ठों पर लिखी हैं और निर्विवाद हैं। यही वह समय था जब आर्यों की अन्तर्देशीय राजनीतिक महत्वाकांक्षाएं चरम सीमा पर पहुँच चुकी थीं और उनकी विदेशो मे फलने की इच्छा बहुत बलवती हो गई थी। हिन्दुस्तान में विस्तार की गुञ्जायश नही रही थी तभी विदेशों मे विस्तार का प्रयत्न हुआ। राजनीतिक महत्वा-

कांक्षा के अतिरिक्त धर्म-प्रचार की भावना भी बौद्ध-काल में बहुत बलवती हो गई थी। हमारा देश उस समय भी जगद्गुरु माना जाता था। मिश्र से मैक्सिको तक के देशों में हिंदुस्तान को देव-स्थान और हिंदू मात्र को देवपुरुष स्वीकार किया जाता था। उन देशों से हजारों यात्री हमारे देश में बड़ी श्रद्धा से तीर्थ यात्रा करने आते थे और हमारे देश से हजारों विद्वान्-प्रचारक, साधु-संत उन देशों मे जाते थे। उन्हें विदेशों में 'हिंदू' नाम से ही पुकारा जाता था। वे अपने को 'भारतीय' कहते थे—क्योंकि उस समय हमने अपने देश का नाम 'भारत' रख दिया था, किन्तु विदेशों में हमारे देशवासियों को भारतीय नाम से कोई नहीं पहिचानता था। सब उन्हें 'हिंदू' ही जानते थे। इसलिये 'भारत' नाम फीका पड़ता गया और हिंदू' नाम के प्रचार की ही वृद्धि होती गयी। अन्य देशों के साथ अन्तर्राष्ट्रीय पत्र-विनिमय तथा अन्य प्रकार के वैदेशिक सम्बन्धों में भी विदेशी राज्य हमे सदैव 'हिंदू' नाम से ही सम्बोधन करते रहे। इसलिये हम 'भारत' नाम होते हुए भी 'हिंदू' नाम का कभी भूले नही। 'हिंदू' नाम अन्तर्राष्ट्रीय नाम हो गया। वह हमारे किसी 'धर्म', 'मत', 'पंथ' या दार्शनिक विचार-श्रेणी का नाम नहीं, बल्कि वह हमारा राष्ट्रीय नाम था। हमने चाहा था, और राजनीतिक कारणों से ही हमारी इच्छा थी, कि हमारे देश का नाम 'भारत' मशहूर हो परन्तु जब अन्य देशों ने 'हिंदू' नाम के अतिरिक्त किसी नाम को स्वीकार न किया तो हमे भी 'हिंदू' नाम को ही प्रधानता देनी पड़ी। बौद्ध-काल मे हमारे वैदेशिक सम्बन्धों के विस्तार के साथ 'हिंदू' नाम का विस्तार बहुत हो गया। भारत नाम को

हमें फिर एक ओर रख कर 'हिंदू' नाम को ही प्रमुख रखना पड़ा।

अतः हमे यह स्वीकार करना पड़ेगा कि बुद्धवाद ने 'हिंदू' नाम को संसार-व्यापी बनाने मे बहुत महत्वपूर्ण कार्य किया। बुद्धवाद के इस उपकार को भुलाया नहीं जा सकता। आश्चर्य केवल यह है कि बुद्धकाल के ह्रास के साथ 'हिंदू' नाम का ह्रास नहीं हुआ। बुद्धवाद की वृद्धि के साथ 'हिंदू' नाम का बहुत विस्तार हुआ किंतु उसके चीण होने के साथ इसका विस्तार और भी बढ़ गया।

कितनी चिंतनीय बात है, कि बुद्धवाद के पतन के कारणों में से एक महत्वपूर्ण कारण की ओर विद्वान् इतिहासकारों का ध्यान नहीं गया। हम यहां इस विषय की खोज मे अधिक स्थान व समय नहीं दे सकते, केवल कुछ प्रासंगिक चर्चा करके ही सतोष कर लेंगे ताकि योग्य इतिहासवेत्ता उसकी छानबीन करने मे ध्यान दे सकें। बौद्धमत के प्रति हिंदू जाति की विमुखता का कारण केवल दार्शनिक मतभेद नहीं हो सकता। हिंदू जाति विचार-भेद के लिये बहुत सहिष्णु है। विचार सम्बन्धी भेद उसे दूसरे मत के प्रति अनुदार नहीं बनाता। यदि बौद्धमत के प्रति हिंदुओं की स्वाभाविक अरुचि होती तो बौद्धमत कभी पनप न सकता। वर्षों तक हिंदू और बौद्ध एक दूसरे के मतभेदों को सहते हुये जीते रहे। कोई किसी का कट्टर विद्वेषी नहीं बना। कुछ लोग बौद्ध सम्प्रदाय के धर्मस्थान 'विहारों' के नैतिक पतन को ही बौद्धमत की गिरावट का कारण मानते हैं। हम उनसे भी सहमत नहीं। हम जानते हैं कि उस समय

बौद्ध-विहार भोगविलास के गढ़ बन चुके थे। वहां जिन भिक्षु और भिक्षुनियों का जमाव था उनमे से अधिकांश आलसी और निष्कर्म होकर विलासी बन चुके थे। फिर भी हम यह नहीं मान सकते कि उनका यह पतन इतना विकट और असाधारण था कि वह सम्पूर्ण बौद्धमत की जड़ हिला देता। उन्हीं भिक्षुओं में अभी तक 'अरहन' और 'भिक्खु' जैसे यती और तपस्वी भी विद्यमान् थे। जो विलासिता बौद्ध विहारों मे फैल चुकी थी उससे कोई भी सम्प्रदाय खाली नहीं होता। ये त्रुटियां कभी बौद्ध शक्ति के ह्रास और सर्वनाश का कारण न बनतीं—अगर, बौद्धमत हिंदू राष्ट्र के लिये विघातक सिद्ध न होता। इतिहास इस बात का साक्षी है कि बौद्धमत का विस्तार हमारे राष्ट्रीय जीवन और हमारी राष्ट्रशक्ति के लिये ही विनाशक नहीं बना, अपितु हमारे राष्ट्रीय अस्तित्व को मिटाने का ही कारण बन चला। उसके निःशस्त्रवाद ने हमे निहत्था और निर्वीर्य बना दिया। हमारी नपुंसकता का जीवित प्रमाण शाक्यसिंह के जीवन में ही मिल गया था। शाक्य राज्य एक छोटा लोकतंत्र शासन था। उसके पराजय का समाचार उसके राजा को तब मिला जब वह एक बौद्ध भिक्षुसंघ का शिलारोपण कर रहा था। इधर उसने भिक्षुसंघ की नीव रखी और उधर शाक्य-राज्य धराशायी होगया। शाक्यसिंह के बौद्धमतावलम्बी होने के कारण उसके जीवन-काल मे ही शाक्य-राज्य पर एक विदेशी जाति ने अधिकार कर लिया। वह वीर थी और योद्धा थी। शाक्य शासन के पराजय का समाचार सुनकर भी राजा उदासीन ही रहा। उसके खून में गर्मी नहीं आयी। उसकी भुजायें नहीं फड़कीं। वह उन्हीं शाक्यों की सन्तान

था जिन मे लोकजित जैसे चक्रवर्त्ती राजा हुए थे। तब शाक्य-राज्य की सीमा समस्त हिन्दुस्तान की सीमा थी। किन्तु बौद्धधर्म की शिक्षा ने इन वीरों को निर्वीर्य बना दिया था। उनके क्षत्रियत्व का नाश हो चुका था। क्षात्र-धर्म का हिंदुस्तान से लोप होगया था। परिणाम यह हुआ कि शाक्यों की राजधानी 'कपिलवस्तु' के पतन के साथ समस्त भारतवर्ष का पतन हो गया। 'हूण' और 'लींचि' जाति के सैनिकों ने बिना रक्तपात के ही हिंदुस्तान को अपने हाथों मे ले लिया। उस अपमानपूर्ण पराजय को देखकर हिंदुओं का खून खौल उठा। वे इस जहर के घूंट को उतनी उपेक्षा से न पी सके जितनी बौद्धधर्मावलम्बियों ने दिखलायी थी। आक्रान्ताओं के अत्याचारों ने हिंदूजाति को और भी बेचैन कर दिया। उन अत्याचारों के तीव्र घात बौद्धधर्म की अहिंसा और प्रेम ी मरहम भरने योग्य नहीं थे। शत्रुओं की तलवार को बौद्धमत की अहिंसा से कुण्ठित नहीं किया जा सकता था। उस समय बौद्ध-धर्म ने हिंदुओं की रक्षा नही की बल्कि उन्हे और भी निहत्था कर दिया। हम बौद्धधर्म के ऊँचे आदर्शों को नीचा नहीं बनाना चाहते। बुद्ध के दिव्यसन्देश की महानता से भी हमे इन्कार नहीं है। हम तो केवल इतिहास को साक्षी मान कर सच्ची घटना पेश करना चाहते हैं। कहा जा सकता है कि बौद्ध काल मे भी वीरों और शक्तिशाली सम्राटों की कमी नहीं थी। हम मानते हैं कि युरोपियन लेखकों द्वारा बौद्धकालीन सम्राटों की अपूर्वशक्ति का वर्णन हमारी पुस्तकों में आता है। उनसे यह जाहिर करने की कोशिश की गयी है कि हिंदुस्तान मे शक्तिशाली सम्राटों का सर्वप्रथम उदय ही

बौद्धकाल में हुआ। इसका कारण यह है कि विदेशी इतिहासकारों को बौद्धकाल से पूर्व के भारतीय इतिहास का ज्ञान नहीं है। कोई समय था जब हमारी इतिहास की पुस्तकें भारत पर मुगल आक्रमण से प्रारम्भ होती थीं, उससे पूर्व के इतिहास से लेखक अनभिज्ञ थे। अब वही पुस्तकें बौद्धकाल से प्रारम्भ होती हैं। उन्हें पढ़कर हम सहज ही इस परिणाम पर पहुंच जाते हैं कि बौद्धकाल में ही भारतवर्ष अपने उत्थान की चरम सीमा पर पहुँचा था। सच्चाई यह नहीं है। हम बौद्धकालीन भारत के गौरव को कम नहीं करना चाहते। वह गौरव भी हमारा गौरव था और उसके बाद का ह्रास भी हमारा ह्रास था। बौद्धकाल मे शक्तिशाली सम्राट् अशोक की और 'देवप्रिय' की महानता से हम इन्कार नहीं करते। बौद्ध भिक्षुओं की साधना और उनकी विश्वकीर्ति से भी हमे अभिमान होता है। किन्तु हम यह नहीं मानते कि हिंदुस्थान में उससे पूर्व इतने शक्तिशाली सम्राटों ने जन्म ही नहीं लिया था। हमारा विश्वास है और इतिहास साक्षी है कि इससे पूर्व भी हमारे राष्ट्र का उतना व उससे भी अधिक विकास हो चुका था। हमारे राष्ट्रीय इतिहास में बौद्धकाल से पूर्व उससे भी अधिक यशस्वी और गौरवमय काल आचुका था। हमारा मतभेद उन्हीं से है जो यह मानते हैं कि हमारी जाति का अभ्युत्थान और पतन मौर्यवंश के उदय और अस्त होने के साथ ही हुआ और उत्थान का कारण मौर्य राजाओं का बौद्धधर्म ग्रहण करना था। बौद्धधर्म के अभिमान का क्षेत्र राष्ट्रीय नहीं वल्कि नैतिक है। नैतिक क्षेत्र मे बौद्धधर्म के कल्याणकारी प्रताप के सामने हमारा मस्तक झुक जाता है। किंतु

लौकिक जगत् में—जहां लोहे से लोहा कटता है—जहां निर्बल सबल का भोजन है—जहां की तृष्णा आध्यात्मिक उपदेशों से शान्त नहीं होती—बौद्ध धर्म ने नेतृत्व नहीं किया। इन्हीं विचारों ने हिंदुओं को बौद्ध धर्म से विमुख कर दिया। जब उन्होंने देखा कि 'हूण' और 'शक' जाति के योद्धाओं की आग ज्वालामुखी की तरह हिन्दुस्तान मे फैल गयी और उन्हों ने सदियो से पालित-पोषित उपवन को तहस नहस कर दिया तब उनका श्रद्धा बौद्ध धर्म से उठ गयी। जब राष्ट्रभक्त हिंदुओं ने देखा कि उनके प्रिय आदर्श—उनके राज्यसिंहासन और उनके परिवार—यहां तक कि उनके आराध्य देवी-देवता भी, जिन्हें वे सर्वशक्ति-सम्पन्न मानकर पूजते थे, पैरों तले कुचल दिये गये और उन पर उन लोगों ने अधिकार कर लिया जो धर्म, दर्शन, भाषा, और संस्कृति की दृष्टि से उनकी अपेक्षा बहुत ही गिरे हुए थे, जिनका आश्रय केवल उनका पशुबल था, उनकी तलवार थी, तब उनकी आस्था बौद्ध धर्म के आत्मिक उपदेशों से उठ गयी। उन्हे उस भभकते हुए ज्वालामुखी का बौद्ध धर्म से कोई भी जवाब नहीं मिला। आखिर उन्हें फिर अपनी उसी यज्ञाग्नि को प्रदीप्त करना पड़ा जो आर्यावर्त्त को विजय करने मे प्रदीप्त की गयी थी। उन्हे फिर उस नये सर्वभक्षी बकासुर से अपनी रक्षा करने के लिये वैदिक-खान खोदनी पड़ी और 'काली' देवी की बलिवेदि पर अपनी तलवार तेज करनी पड़ी जो महाकाल की प्यास को बुझा सकती। उनकी धारणा सच्ची थी। उनके उस नये युगधर्म ने उनकी रक्षा की। उनकी पराजय विजय में तब्दील हो गयी। नवोदित हिन्दू राष्ट्र का ओज शत्रु

से सहन नहीं हो सका। विक्रमादित्य इस नये युगधर्म के प्रथम स्थापक थे। उन्होंने विदेशी आक्रन्ताओं को भारी शिकस्त दी और ललितादित्य ने उन्हें उल्टे ैर वापिस करने में पूरी कामयाबी हासिल की। वे तारतार और मंगोलिया के जंगलों में भाग गये। क्षात्रधर्म ने त्यागवाद पर विजय पायी । हिंदू राष्ट्र ने फिर सिर उठाया और अक्षय गौरव प्राप्त किया; न केवल राजनीति मे बल्कि साहित्य-दर्शन-कला-वस्तुविद्या-वणिक-व्यापार—सभी क्षेत्रों मे हिंदुस्तान उन्नति की चोटी पर पहुँच गया । हिंदुस्तान में एक नवीन स्फूर्ति आगयी जो केवल स्वाधीन और विजयी देशों मे आती है। बौद्धधर्म के पतन के साथ 'वैदिक धर्म' की पताका लहरा उठी और वैदिक काल की कीर्ति से फिर हिंदुस्तान का आकाश मण्डल गूंज उठा । यह विजय धर्म की नहीं—किसी पथ की नहीं, बल्कि राष्ट्र की थी।

बौद्धमत ने सब से पूर्व एक सार्वभौम धर्म का विश्व भर मे प्रचार करने की कोशिश की थी। उसका आदेश था—'भिक्षुओ ! संसार भर की दशों दिशाओं मे फैल जाओ और विश्व को सच्चा राह बताओ।' भिक्षुओं का एक ही लक्ष्य था—'सत्य का प्रचार।' उनके प्रचार मे कोई और लौकिक व राजनीतिक आकांक्षा छिपी हुई नहीं थी। धर्म प्रचारक प्रायः साम्राज्य-विस्तार के अग्रदूत होते हैं। बौद्ध भिक्षु केवल धर्म-प्रचारक थे। उन्होंने अपने प्रयत्न मे आशातीत सफलता पाई। किंतु, वे संसार से पशुबल के बीज का नाश नहीं कर सके। वे विश्व मे आत्मिक बल के प्रचार व लौकिक पशुबल के त्याग का इतना महत्व नहीं समझा सके कि हिंदुस्तान

को अपनी रक्षा के लिये तलवार का सहारा न लेना पडता। फिर भी बौद्धधर्म का आदर्श सराहनीय था। हिन्दुस्तान ने भी उस महान आदर्श के लिये महान कदम उठाया था। जिस निःशस्त्रीकरण के लिये आज ससार के देशों की सब कोशिशें नाकाम्याब हो चुकी हैं उसी आदर्श को हिंदुस्तान ने राष्ट्रीय जीवन में ढाल कर दिखा दिया था। तब केवल आत्मिक बल ही हमारे राष्ट्रीय संगठन का सूत्र था। अहिंसा का इस कदर पालन किया जाता था कि शाही फ़र्मान के मुताबिक घोड़ो और हाथियों को पिलाये जाने वाले पानी को भी छोटे २ कीटाणुओं की जीवरक्षा के लिये छान कर पिलाया जाता था। हिंदुस्तान ने इस अहिंसा के परित्राण मे कम कुर्बानी नहीं की थी! हिंसा की हिंसा करते हुए वह खुद हिंसा का शिकार हो गया! आखिर उसे यही सबक़ मिला कि जब तक दुनिया में खून की प्यास बाकी है, जब तक राष्ट्रीय व जातीय भेद इतने तीव्र हैं कि एक गिरोह का आदमी दूसरे गिरोह का दुश्मन बना हुआ है, तब तक हिंदुस्तान भी अपनी राष्ट्रीय शक्ति को मज़बूत किये बिना जिन्दा नहीं रह सकता और न ही वह अपने आदर्शों की रक्षा कर सकता है। आक्रमणकारी ने निःशस्त्र हिंदुस्तान पर चढ़ाई करके उसे फिर चैतन्य कर दिया विश्व-भ्रातृत्व की दुहाई देने वालों की जबान बन्द हो गई। निम्न श्लोक से तत्कालीन भारत की स्थिति का कुछ अनुमान कर सकते हैं:—

"ये त्वया देव निहिता असुराश्चैव विष्णुना।
ते जाता म्लेच्छरूपेण पुनरद्य महीतले॥
व्यापादयन्ति ते विप्रान् घ्नन्ति यज्ञादिका क्रियाः।

हरन्ति मुनिकन्याश्च पापाः किं कि न कुर्वते ।
म्लेच्छाक्रांते च भूलोके निर्वषट्कारमंगले ।
यज्ञयागादि विच्छेदाद्देवलोकोऽवर्मादति ॥ (गुणाढ्य) ॥

अर्थात् विष्णु ने जिन असुरों का नाश किया था वे फिर म्लेच्छ रूप धर कर पृथ्वी पर आगये हैं। वे म्लेच्छ ब्राह्मणों की हत्या करते हैं और यज्ञों का नाश करते हैं। वे मुनि-कन्याओं का अपहरण तक करते हैं। कोई भी पाप उनसे दूर नहीं। उनके इन अत्याचारों से और यज्ञयागादि न होने के कारण 'देवलोक' का सर्वनाश हुआ जाता है। (गुणाढ्य)।

हूणों और शकों के अत्याचार से पीड़ित हिंदुस्तान ने जब बौद्ध भिक्षुओं का भगवा वस्त्र छोड़ केसरिया बाना पहिना और तलवार लेकर रणक्षेत्र मे कूद पड़े तब विदेशियों को सिंधु नदी से पार करके ही दम लिया। उस समय हिंदुस्तान में नई राष्ट्रीयता का बीज बोया गया और नये आदर्शों पर राष्ट्र-निर्माण की नींव रखी गई। उसी समय हमारे नेताओं ने यह सीख ली कि राष्ट्र की रक्षा ऐसे धर्म के आधार पर नहीं हो सकती जो सार्वभौम हो। उसके लिये राष्ट्रीय धर्म का होना ही आवश्यक है।

बौद्ध धर्म के अन्तर्देशीय प्रचार ने हिंदुस्तान के लिये एक नया भय पैदा कर दिया था। विधर्मी शत्रु उतना खतरनाक नहीं होता जितना सहधर्मी शत्रु। पड़ोस के देश भी बौद्ध होने के कारण हिंदुस्तान के सहधर्मी हो गये। वही जब आक्रमण करने आये तो उनको हिंदुस्तान के सहधर्मियों से सहानुभूति मिल गई। इसलिये शत्रु और अपने बीच इस सूत्र का मूल नाश करने की आवश्यकता

उस समय के राष्ट्रीय नेताओं को अनुभव हुई। उन्होंने निश्चय किया कि हिंदुस्तान को ऐसे सार्वभौम धर्म की आवश्यकता नहीं है जो पड़ोस के देशों में मैत्री और सदाशयता के भावों के स्थान पर साम्राज्य-लोलुपता और बर्बरता की उत्तेजना पैदा करे। इसी लिये उन्होंने बहुत शीघ्र हिंदुस्तान को राष्ट्रीयता के और शूरवीरता के भावों से भर दिया और सार्वभौमिकता की महत्वाकांक्षा को तिलांजलि दे दी।

बौद्धमत को सार्वभौमिकता के प्रति हिंदुस्तान में अरुचि और विरोध के भाव और भी प्रबल हो उठे जब बौद्धशक्ति ने हिंदुस्तान मे फिर से बौद्धमत के प्रचार का प्रयत्न किया। राष्ट्रीय भावना उस समय तक पूर्णविकास पा चुकी थी। उन्होंने किसी भी कीमत मे विदेशियों का प्रभुत्व स्वीकार नहीं किया। विदेशियों के बौद्ध होने की सूरत में उन्हे हिंदुस्तान के बौद्धों से सहानुभूति मिलना बहुत स्वाभाविक था। जैसे कैथोलिक स्पेन को इंग्लैण्ड में पुनः कैथोलिक वंश स्थापित करने के लिये कैथोलिक वंशजों की सहानुभूति मिलनी स्वाभाविक है। भारत के बौद्धों की सहानुभूति पाने की आशा से उस समय पड़ोस की कुछ बौद्ध शक्तियों ने भारत पर आक्रमण भी किया। हमारे पास स्थान नहीं है कि हम तत्कालीन इतिहास का विस्तार से वर्णन करें। किन्तु यहाँ इतना ही पर्याप्त है कि हमारे पुराणों में कहीं कहीं पर 'न्यनपति' विदेशी बौद्ध राजा द्वारा (आर्यदेशजाः) आर्य देशवासियों पर किये गये आक्रमणों का जिक्र आता है। 'हहा' नदी के किनारे चीन के बौद्ध राजा द्वारा हिंदुस्तान पर किये गये आक्रमण का वर्णन भी आता है।

'श्यामदेशोद्भवा लक्षास्तथा लक्षाश्च जापका ।
दशलक्षाश्चीनदेश्या युद्धाय समुपस्थिता ॥'

अर्थात् युद्ध करने के लिये लाखों सैनिक 'स्याम' देश से और लाखों चीन देश से आये।

वहीं यह भी वर्णित है कि किस तरह बौद्धों को हार हुई। उन्होंने तब यह प्रण कर लिया कि हम भविष्य में कभी हिंदुस्तान पर आक्रमण नहीं करेंगे। भविष्य पुराण में इसी आशय का यह श्लोक है:—

सर्वैश्च बौद्धवृन्दैश्च तत्रैव शपथं कृतम् ।
आर्यदेशं न यास्याम. कदाचिद्राष्ट्रहेतवे ॥
(भविष्य पुराण प्रतिसर्ग पर्व)

अर्थात्—वहीं सब बौद्धों ने यह शपथ ली कि भविष्य में कभी राष्ट्रीय स्वार्थ के लिये आर्य देश में कदम नहीं रखेंगे।

बौद्ध-विरोधी इस प्रतिक्रिया में हमारी कई संस्थाओं ने बहुत बल पकड़ा। वर्णाश्रम व्यवस्था फिर जागृत हुई। बौद्ध काल में इस व्यवस्था में कुछ शिथिलता आगई थी। 'वर्णाश्रम व्यवस्था' की लोकप्रियता इतनी बढ़ गई कि राजा भी इस को पुनः स्थापना में अभिमान अनुभव करते थे और 'वर्णव्यवस्थापनपर.' वर्णव्यवस्थापन में तत्पर (सोनापत ताम्रलेख) तथा 'वर्णाश्रमव्यवस्थापनप्रवृत्तचक्र.' (मधवत ताम्रपट कहलाने में गौरव समझते थे। वर्ण व्यवस्था के प्रति इतना प्रेम बढ़ गया कि हिंदू होने का अभिप्राय ही वर्ण-प्रेमी से हो गया। वर्णाश्रमव्यवस्थी और हिंदू शब्द पर्यायवाची हो गये। इस व्यवस्था के विरोधी को म्लेच्छ कहा जाने लगा।

'चातुर्वर्ण्यव्यवस्थानं यस्मिन्देशे न विद्यते।
तं म्लेच्छदेशं जानीयादार्यावर्तस्ततः परम्॥

अर्थात्—'जिस देश में चातुर्वर्ण्य व्यवस्था नहीं है वह म्लेच्छ देश है। आर्यावर्त उस देश से अलहदा है।'

इसी प्रतिक्रिया ने हमारे देशवासियों को समुद्र-यात्रा से रोक दिया, विदेशियों के सम्पर्क में आने से निषेध कर दिया। यह निषेध किसी धर्म विचार से नहीं बल्कि राष्ट्र विचार से किया गया। राष्ट्र की रक्षा के लिये उस समय राष्ट्रीयता के विचारों का प्रचार आवश्यक था। राष्ट्रीयता सदैव संकीर्ण होती है वह सार्वभौमिकता या विश्वभ्रातृत्व के विरुद्ध है। निःसंदेह यह संकीर्णता औचित्य की सीमा के बाहिर चली गई परन्तु यही युग धर्म था। इसी ने हिंदुस्तान राष्ट्र की विदेशियों से रक्षा की थी। अब भी हमारे देश मे ऐसे राष्ट्रव दी मौजूद हैं जो बिना राष्ट्रीय स्वाधीनता और अन्तर्देशीय प्रतिष्ठा प्राप्त किये विदेशी राज्यों व विदेशों से सम्पर्क मे आने के विरोधी हैं। वे उनके समकक्ष होकर ही उनसे मिलने के पक्षपाती हैं। राष्ट्रीय सन्मान की रक्षा के लिये वे इस संकीर्णता को उचित ही समझते हैं।

अतः यह निर्विवाद है कि भारत मे बौद्ध मत के पतन का कारण राजनीतिक व राष्ट्रीय था। और राष्ट्रीय विकास के लिये वह पतन आवश्यक हो गया था। बौद्धमत का कोई भौगोलिक केन्द्र नहीं था। हिंदुस्तान ने भी बौद्ध मत को अपना कर भौगोलिक केन्द्र खो दिया था। जब हिंदुस्तान की राष्ट्रीय चेतना जागी तो उसे इस अभाव का ज्ञान हुआ। उसकी पूर्ति के लिए आवश्यक था

कि वह भौगोलिक अस्तित्व से शून्य धर्म का त्याग कर देता, और संसार को दिखला देता कि हिंदुस्तान केवल एक विचार श्रेणी या जाति नहीं बल्कि भौगोलिक परिधि से बंधा हुआ राजनीतिक केन्द्र है। हमारी भौगोलिक परिधि अस्वाभाविक सीमा नहीं है। कुदरत ने हमें एक केन्द्र के रूप में ही बनाया है। हमारे दक्षिण की ओर सैकड़ों योजन लम्बा समुद्र है जो हमें एक ही सीमा-सूत्र में पिरोये हुए है। यह समुद्र-शृंखला सदियों तक हमारे काव्य-साहित्य की विशेष शोभा रही है। कवियों ने बड़े अभिमान से इसका वर्णन किया है। हमारे पश्चिम की ओर के प्रांत की परिधि में बहुत उथल-पुथल होती रही। कितने ही आक्रमणकारी इधर से आये और बस गये। अंतर्जातीय सम्बंध भी हुए और मिश्रित जातियों का जन्म हुआ। हमारे लिये यह दुर्भाग्य देर तक बना रहा कि उक्त दिशाका सीमा-निर्धारण नहीं हुआ। आखिर उज्जैन के 'महाकाल' ने उक्त सीमा का निश्चय किया। वह सीमा 'सिंधु नदी के अतिरिक्त और कौनसी हो सकती थी। हमारे पूर्वपुरुष जिस दिन सिंधु नदी के पार आकर बसे थे उसी दिन से यह सीमा बन चुकी थी। उन्होंने ही इस नये राष्ट्र को जन्म दिया था। उन्होंने उसी दिन से अपने पुराने रिश्ते को त्याग कर नई भूमि मे नई आशाओं के साथ नये राष्ट्र का निर्माण शुरू कर दिया था। उनके सामने एक महान् लक्ष्य था और विस्तार का विशाल क्षेत्र खुला था। अपने इस कायापलट की स्मृति वह इससे अधिक प्रभावशाली उपाय से कायम नहीं रख सकते थे कि सिंधु नदी पार करके अपना नाम 'सिंधु' रख लेते। सिंधु नदी ही उनकी प्रथम अवतार-

भूमि थी और सिन्धु कहलाने ही उन्हें योग्य था।

सिंधु नदी को अपनी पश्चिमी सीमा कहना कोई नयी सूझ नहीं है। बौद्ध धर्म के पतन के साथ हिंदुस्तान की राष्ट्रीयता का जब पुनरुत्थान हुआ था तब भी हिंदू राष्ट्र की पश्चिमी सीमा सिंधु नदी ही थी। उस समय के उत्साही राष्ट्रवादियों का यही निश्चय था कि वे वेदकालीन 'हिंदू' राष्ट्र को शत्रुओं से छीन कर प्राचीन गौरव को स्थापित करेंगे। उन्होंने अपने इरादे को पूरा किया और उसी हिंदू राष्ट्र की स्थापना की जिसकी प्राचीनतम आर्यों ने नींव रखी। पुराणों में लिखा है:—

> एतस्मिन्नन्तरे तत्र शालिवाहन भूपतिः।
> विक्रमादित्यपौत्रश्च पितृराज्यं प्रपेदिरे॥
> जित्वा शकान् दुराधर्षान् चीनतैत्तिरिदेशजान्।
> बाल्हिकान् कामरूपांश्च रोमजान् खुरजान् शठान्॥
> तेषां कोषान् गृहीत्वा च दण्डयोग्यानकारयत्।
> स्थापिता तेन मर्यादा म्लेच्छार्याणां पृथक् पृथक्॥
> सिंधुस्थनामिति ज्ञेयं राष्ट्रमार्यस्य चोत्तमम्।
> म्लेच्छस्थानं परं सिंधोः कृतं तेन महात्मना॥

(भविष्य पुराण, प्रतिसर्गपर्व अ० २।)

अर्थात्—इसके बाद विक्रमादित्य का पौत्र शालिवाहन राज्यारूढ हुआ। उसने चीन व तातीर देश के दुर्विजेय शकों, वाल्हिकों तथा रोम के कामरूपों को जीतकर उनसे उनके खज़ाने छीन लिये। उसने म्लेच्छ और आर्यों की सीमा निर्धारित कर दी। आर्य राष्ट्र की उसने सिंधु नदी की सीमा निश्चित की और उस

से आगे म्लेच्छ देश नियत किया। (भविष्य पुराण, प्रतिसर्ग पर्व अ० २)

हमारे देश का प्राचीनतम नाम 'सप्तसिंधु' या सिंधु' मिलता है। 'भारत वर्ष' नाम बहुत आधुनिक है। एक व्यक्ति से सम्बन्ध रखने के कारण उसका प्रभाव भी इतना व्यापक नहीं हुआ। व्यक्ति का गौरव समय के साथ अवश्य ही मंद पड़ जाता है। उसका प्रभाव वैसा स्थायी नहीं होता जैसा किसी ऐतिहासिक घटना से सम्बन्ध अथवा किसी अतुल वरदान-पूर्ण प्राकृतिक देन से सम्बद्ध नाम का होता है। भारत सम्राट् का लोप हो चुका और ऐसे ही अनेकों सम्राट् आये व गये। किन्तु सिन्धु नदी आज सदियों बाद भी उसी तरह बह रही है। उसकी याद कभी पुरानी नहीं होती। उसका कभी क्षय नहीं होता। वह सदैव हमारी मधुर स्मृतियों को पुनर्जीवन देती रहती है; वह हमारे भूत और वर्त्तमान का सदैव रहने वाला सन्धि सूत्र है। वह हमारे राष्ट्रीय जीवन की स्मृति को सदैव अमर बनाये रखने वाली याद है। वह एक प्राकृतिक वरदान होने के कारण हमारे राष्ट्रीय जीवन को अधिक प्राकृतिक बनाने में सहायक है। आर्यों के राष्ट्र को 'सिन्धुस्थान' नाम देने में उपयुक्त कारण भी थे। हमारे पूर्वपुरुषों ने, नामकरण से पूर्व, इन कल्पनाओं पर अवश्य ही विचार किया होगा।

'सिन्धु' नाम सौभाग्य से दो अर्थ रखता है। 'सिन्धु' नदी के इलावा संस्कृत में समुद्र को भी सिंधु कहते हैं। अतः एक 'सिन्धु' शब्द हमारे राष्ट्र की सब सरहदों का निर्देश कर देता है। हमारा राष्ट्र सिंधु और सिंधु (समुद्र) से घिरा हुआ है। पश्चिम

से सिंधु है ही। उत्तर में हिमालय के अन्तर्गत सिंधु ही सीमा निर्धारित करती है। पूर्व मे ब्रह्मपुत्र नदी भी हिमालय से ही निकलने के कारण सिंधु की ही सहोदर है। कुछ लोग इसे सिंधु की ही पूर्वीय धारा मानते हैं। दक्षिण में सिंधु समुद्र का विस्तार है ही। इस प्रकार आर्यराष्ट्र या सिंधुस्थान सचमुच सिंधुस्थान ही हो जाता है। सब ओर से यह 'सिंधु' से ही घिरा हुआ है।

यह नहीं समझना चाहिये कि 'सिंधु' नाम केवल भौगोलिक कारणों से ही हमारे पूर्वज देश भक्तो को प्रिय था। उस नाम के साथ एक राष्ट्रीयता का सम्बन्ध होने के कारण उसकी लोकप्रियता बहुत बढ़ गई थी। सिंधुस्थान' केवल एक 'भूमिभाग' का नाम नहीं था बल्कि एक राष्ट्र' का था और ऐसे राष्ट्र का था जिस मे आदर्श राष्ट्र के सब लक्षण मौजूद थे। (राज्ञः राष्ट्रम्)—यह भी स्पष्ट था कि 'सिंधुस्थान' की संस्कृति वही था जा वैदिक आर्यों की था। 'सिंधुस्थान' (राष्ट्रमार्यस्य चोत्तमम्) आर्यों का उत्कृष्ट राष्ट्र था, जो 'म्लेच्छस्थान' या विदेशी राज्यों से बिलकुल भिन्न था। हमारा अभिप्राय यह है कि 'सिंधुस्थान' उन्हीं अर्थों में एक राष्ट्र था जिन अर्थों से कोई भी राष्ट्र 'राष्ट्र' कहलाता है। सिंधुस्थान का संगठन धार्मिक नहीं था। धर्म या दर्शन से इसका कोई सम्बन्ध नही था। इसी तरह आर्य शब्द भी केवल राष्ट्रीय था। सिंधुस्थान के प्रत्येक निवासी को, जो सिंधुस्थान को अपना देश मानता था, और जो इस की सस्कृति को अपनी संस्कृति मानता था, चाहे वह वैदिक—अवैदिक—ब्राह्मण या चण्डाल हो, आर्य कहते थे। जाति, वर्ण, श्रेणी या विचार-भेद से उसकी राष्ट्रीयता मे भेद नहीं

आ सकता था। इसी तरह 'म्लेच्छ' प्रत्येक विदेशी को कहते थे। 'सिंधु' व 'म्लेच्छ' की धार्मिक परिभाषा न हो कर राष्ट्रीय थी।

राष्ट्र सम्बन्धी यह व्याख्या वैसे ही शाही फर्मान द्वारा हो चुकी थी जैसे शाही फर्मान सिन्धुस्थान मे होते थे। शक्तिशाली लोकमत के निर्णय का महत्व शाही फर्मान से भी अधिक था। 'अटक' नदी को सिन्धुस्थान की पश्चिमी सीमा निर्धारित करने का निश्चय किसी एक महत्वाकाँक्षी राजा के दिल की मुराद नहीं थी। यह निश्चय सदियों के इतिहास ने और राष्ट्रीय भावनाओं से भरी जनता का सर्वसम्मत निश्चय था। 'सिंधु' को अपनी राष्ट्रीय सीमा निर्धारित करना और इस निर्णय को जी-जान से निभाना, बड़ी से बड़ी कठिनाई को भी इस निर्णय के सामने तुच्छ समझना, और सिन्धु नदी तक समस्त भूमि पर अपना जन्म सिद्ध अधिकार समझना थोथी महत्वाकाङ्क्षा का परिणाम नहीं हो सकता। उसके पीछे सदियों का इतिहास छिपा था। करोड़ों आदमी, जिनमें राजा से रंक और प्रधानमंत्री से निर्धन किसान तक शामिल थे, सिंधु को ही अपनी राष्ट्रीय सीमा मानते आये थे। इस आशय का शाही फर्मान भी अवश्य ही निकला था। और उस फर्मान को धर्माध्यक्षों द्वारा स्वीकृति भी दे दी गई थी. तभी इसे निभाना प्रत्येक सिंधुस्थानवासी ने अपना धर्म मान लिया है। यह प्रश्न उसके जीवन-मरण का प्रश्न बन गया था। इस नाम का गौरव अब भी खोया नहीं हुआ है। इन शब्दों का भविष्य अभी बड़ा शक्तिशाली है। आज भी ये शब्द असंख्य जनता के हृदय में देशप्रेम का प्रवाह ला देते हैं लाखों आदमी 'हिन्दू' और 'हिन्दुस्तान' के अभिप्राय को सच्चे

अर्थों में नहीं समझते, फिर भी यह नाम उन्हें उनकी राष्ट्रीयता की याद दिला देते हैं। 'आर्यावर्त' और 'भारतवर्ष' नामों में यह विशेषता नहीं। समय आएगा जब हिंदू और हिंदुस्तान नामों की राष्ट्रीय विशेषता को प्रत्येक हिंदुस्तान निवासी समझेगा और अपने धार्मिक मतभेदों को भुलाकर इसी नाम से पुकारे जाने में गौरव मानेगा। इन नामों को धार्मिक रंग देना भूल है। ये विशुद्ध राष्ट्रीय नाम हैं।

'हिन्दुत्व' की व्याख्या में अगला क़दम रखने से पूर्व हम अपने पाठकों से एक अपराध के लिये क्षमा मांगना चाहते हैं। बौद्धधर्म के ह्रास को भारत के लिये राजनीतिक आवश्यकता कहते हुये हमने अपना दिल आप दुखाया है। हमने हिंदुस्तान द्वारा बुद्धमत की अस्वीकृति का कारण बतलाते हुए जो कुछ भी कहा है उसका यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि हम बौद्धमत के आदर्शों व उसकी संस्थाओं को अनादर की दृष्टि से देखते हैं। कदापि नहीं। हम बौद्धसंघ को पूज्य मानने में किसी भी बौद्ध-धर्मावलम्बी से कम नहीं हैं। संसार के इतिहास में बौद्ध-संघों से अधिक आदर शायद ही किसी संघ ने पाया हो। हमने बौद्ध संघ में दीक्षा नहीं ली, इसका यह आशय नहीं कि 'संघ' हमारे योग्य नहीं था, बल्कि यह है कि हम ही 'संघ' के पवित्र मन्दिर में प्रवेश करने योग्य नहीं थे। संसार को मनुष्य मात्र में छिपी हुई पशुता से रिक्त करने की सबसे पूर्व और सबसे अधिक कामयाब कोशिश बौद्ध धर्म के ही संस्थापक व संचालकों अरहत और भिक्षुओं ने की। हमें अभिमान है कि संसार को इस दिव्य सन्देश देने और उसका

सफल प्रचार करने वाले प्रचारकों का जन्म हमारे ही राष्ट्र में हुआ था—इसी भूमि के अन्न जल से वे पले थे और उनके मन व मस्तिष्क में इसी पुण्य भूमि की संस्कृति के संस्कार थे।

बौद्ध सङ्घों के प्रति जब हमारी इतनी पुज्य भावना है तो उसके प्रतिष्ठापक महात्मा बुद्ध के प्रति हमारी पूज्य भावना न हो, यह कब सम्भव है। उनकी महानता के आगे हमारा सिर स्वयं झुक जाता है। हम उनके चरणों तक पहुँचने का साहस भी नहीं कर सकते—फिर भी बहुत नम्र होकर अपनी श्रद्धाञ्जलि उनके चरणों में भेंट करते हैं। हम उनकी दिव्यवाणियों के गूढ़ रहस्य को पूरी तरह समझ नहीं पाते, तथापि उन्हें निर्भ्रान्त मानते हैं। उनकी वाणियों में ईश्वरीय सत्य है जो कभी दोषयुक्त नहीं हो सकता और हमारी बुद्धि लौकिक जगत् के मिथ्या आचार-व्यवहार से कलुषित हुई है। शायद अभी संसार उनकी दिव्य वाणी को समझने के योग्य नहीं हुआ था। अभी उसका अज्ञानान्धकार दूर नहीं हुआ था। वह उनकी प्रचण्ड दीप्ति को देखकर चकाचौंध होगया। संसार अभी तक 'जीवन-सङ्घर्ष' के कानून पर चल रहा है। वह क़ानून स्मृतिकार मनु के शब्दों में यह है—

चलानामचला भक्ष्या दंष्ट्रिणामप्यदंष्ट्रिणः।
स हस्तानामहस्ताश्च शूराणां चैव भीरवः॥

(मनु)

अर्थात्—चलने वाले प्राणी अचल प्राणियों को खाते हैं, दांतों वाले बग़ैर दांत वालों को खाते हैं, हाथों वाले बिन हाथ वालों को और शूरवीर कायरों को भोजन बनाते हैं।

यह कानून संसार के कण-कण में व्याप्त है। जब तक सत्य और अहिंसा का कानून इस व्याप्त कानून का स्थान नहीं लेता तब तक उसकी आभा सुदूर आकाश मे चमकने वाले तारों की सी है—जिनकी रोशनी भूतल पर नहीं पहुंचती। तब तक राष्ट्रीयता भी सार्वभौम धर्म को स्वीकार नहीं करेगी।

किन्तु भगवान् बुद्ध हमारे लिये उतने ही पूज्य हैं जितने भगवान् कृष्ण, श्री रामचन्द्र और श्री महावीर। उनका सन्देश भी हमारे राष्ट्रीय आत्म की अचल आकांक्षाओं का प्रतिनिधि है और उसके लक्ष्य हमारे स्वप्न है। यदि कभी हमारे भूमण्डल पर 'सत्य' का अखण्ड राज्य होगा तो भगवान् बुद्ध ! आप देखेंगे कि जिस भूमि ने आपके आदर्शों को जन्म दिया था और जिन लोगों ने उन्हे क्रियात्मक जीवन मे अपनाया था वही उस आदर्श को विजयी बनाने में सब से आगे रहेंगे। स्वयं आपको जन्म देकर क्या भारत की पुण्य भूमि ने इसका जीवित प्रमाण नहीं दे दिया !!

४

अभी तक हमने संस्कृत के आधार पर ही 'सिन्धु' शब्द के अर्थ और उसके विकास का वर्णन किया है। हमने यह भी सिद्ध किया है कि हमारे देश का राष्ट्रीय विकास इतना हो चुका था कि 'आर्यावर्त्त' या कोई और नाम उसे प्रकट करने में पर्याप्त नही थे। केवल 'सिंधुस्थान' नाम ही हमारी राष्ट्रीय प्रगति के अनुकूल था। 'आर्यावर्त्त' के नाम के साथ वर्ण व जाति-भेद के कुछ ऐसे संकीर्ण अर्थ मिल गये थे जो हमारे राष्ट्रीय विकास व विस्तार में बाधा डाल सकते थे। उनके दुष्प्रभाव से बचने के लिये एकऐसे विराट् नाम की आवश्यकता थी जो उन संकुचित भेदों को भुलाकर नयी राष्ट्रभावना का द्योतक होता। वही नाम 'सिंधुस्थान' था। आर्यावर्त्त नाम में कितनी सङ्कीर्णता आ गयी थी, इसका उदाहरण इस निम्न परिभाषा से मिलता है।

चतुर्वर्ण्यव्यवस्थानं यस्मिन्देशे न विद्यते।
तं म्लेच्छदेशं जानीयादार्यावर्त्तस्ततः परम्॥

अर्थात् जिस देश में वर्ण-व्यवस्था नहीं है वह म्लेच्छ देश है और उसके अतिरिक्त देश का नाम 'आर्यावर्त' है।

आर्यों की यह परिभाषा कभी स्थायी नहीं हो सकती थी। इसका सबसे बड़ा दोष यह था कि यह वर्णाश्रम व्यवस्था को राष्ट्र से अधिक महत्व देती थी। कोई भी व्यवस्था चाहे वह कितनी ही अच्छी क्यों न हो, समाज व राष्ट्र के लिये होती है, समाज व राष्ट्र किसी व्यवस्था के लिये नहीं होते। प्रधानता समाज व राष्ट्र की ही होनी चाहिये। 'चातुर्वर्ण्य व्यवस्था' का अस्तित्व आज है, कल नहीं। ये सामयिक धर्म हैं समय की आवश्यकतानुसार इनका अस्तित्व बनता-मिटता रहता है। उनके मिटने के साथ राष्ट्र के अस्तित्व के मिटने की भी कल्पना की जा सकती है। क्या हमारे देश से 'वर्णव्यवस्था' मिटने के बाद हमारे देश की हस्ती मिट जायगी ? क्या हमारा देश 'म्लेच्छ देश (विदेशियों की भूमि हो) जायगा ? हमारे ही देश के सन्यासी, आर्यसमाजी व सिक्ख इस 'चातुर्वर्ण्यव्यवस्था' को नहीं मानते। क्या वे परदेशी हैं ? हरगिज नहीं। वे हमारे हैं खून से, जाति से, संस्कृति से और हर सूरत से। इससे हजार गुणा अच्छी परिभाषा तो 'भारत' की है।

'तं वर्ष भारत नाम भारती यत्र संतति ।'

अर्थात् - उस देश का नाम भारत है, जहां भारत सन्तान रहती है।

हम सब एक माता पिता की सन्तान होने के कारण एक हैं— हमारा सम्बन्ध खून का सम्बन्ध है। इस दृष्टि से 'भारत' नाम 'आर्यावर्त्त' की अपेक्षा कहीं अधिक श्रेष्ठ था।

बौद्धमत के अभ्युदय व पतन के समय देशी भाषाओं का

प्रयोग बहुत बढ़ रहा था। संस्कृत का प्रयोग केवल उच्च श्रेणी के लोगों में और उन्हीं की संकुचित प्रथाओं व उन्हीं के दुर्गम दायरों में इतना जकड़ा गया था कि नये नामों व आदर्शों का प्रवेश भी तब तक स्वीकार नहीं किया जाता था जब तक उन्हे संस्कृत वेष में न ढाल लिया जाय। परिणाम यह हुआ कि व्यक्ति के नित्य नये व्यावहारिक जीवन व राष्ट्र की नई सामाजिक प्रगतियों का नाम संस्कृत में नहीं बल्कि आम बोलचाल की भाषा 'प्राकृत' में रखे जाने लगे। राष्ट्र के नव-नूतन सजीव विचारों की अभिव्यक्ति उस समय की सजीव भाषा प्राकृत मे ही होने लगी। संस्कृत का प्रयोग केवल आलंकारिक होगया। व्यावहारिक जगत् से वह नित्यप्रति दूर होती गई। यही कारण था कि हमारे देश का नाम भी जब लोगों मे 'सिन्धु' व 'सिंधुस्थान' प्रचलित होता गया तब संस्कृत के धुरंधर लेखकों ने 'भारत' नाम को ही अपनाये रखा, इसीलिये प्राकृत मे हिंदुस्तान शब्द का प्रयोग बहुत स्थानों पर है। प्राकृत ही उस समय की जीवित भाषा थी। संस्कृत के लिये हमारे दिलो में बहुत सम्मान है। हमारी जाति सदैव संस्कृत भाषा को पूज्य दृष्टि से देखती रहेगी। हमार राष्ट्र के प्रथमविकास की उसमे स्मृति है और हमारे राष्ट्रीय जीवन की एकता व समृद्धि मे उसका बड़ा हिस्सा है। हमारे विचारों को उच्च और हमारे आदर्शों को पवित्र बनाने में संस्कृत साहित्य के हम सदैव ऋणी रहेंगे। किंतु बोलचाल की भाषा का स्थान उस समय प्राकृत ने ले लिया था। वही राष्ट्रभाषा बन चुकी थी। उसी का नाम हिन्दी व हिंदुस्थानी हो चुका था। हिन्दुस्थानी हिन्दुस्थान की भाषा थी। अतः

हिन्दुस्थानी को राष्ट्रभाषा बनाने का प्रयत्न न तो नया है और न अस्वाभाविक। हिंदुस्थान में ब्रिटिश शासन के समागम से सदियों पूर्व हिंदुस्थानी हमारी बोलचाल की भाषा बन चुकी थी। रामेश्वरम् से हरिद्वार पर्यन्त कोई भी साधु व व्यापारी हिंदुस्थानी की सहायता से पर्यटन कर सकता था। संस्कृत भाषा से वह विद्वान् पण्डितों या राजदरबारों में प्रवेश पा सकता था। मगर हिंदुस्थानी उसे राज-सभा से लेकर बाजार के चलते फिरते आदमी तक सबसे मिला सकती थी। नानक, चैतन्य और रामदास जैसे सन्त महात्मा इसी भाषा से प्रान्त २ में अपनी शिक्षाओं का प्रचार कर सकते थे। 'हिन्दुस्थान' नाम के पुनर्जीवित व लोकप्रिय होने के साथ ही 'हिंदुस्थानी' की लोकप्रियता भी बढ़ गयी था। राष्ट्रीय सङ्गठन की प्रचण्ड भावना ने ही 'आर्यावर्त्त' राष्ट्र को जन्म दिया था और उसका नाम 'हिन्दुस्थान' रखा था। उसी भावना ने हिन्दुस्थान की तत्कालीन भाषा को हिन्दुस्थानी नाम देकर राष्ट्रीय भाषा बना दिया था। यह भी राष्ट्रीय सङ्गठन के कार्यक्रम का एक हिस्सा था। बिना एक भाषा के एक राष्ट्र कैसे बनता?

'हूण' और 'शक' जाति के विदेशी आक्रमणकारियों के पराजय और निर्वासन के बाद आजाद हिन्दुस्थान में सदियों तक शांति और समृद्धि का राज्य रहा। स्वाधीनता एक वरदान है। राजा से रङ्क तक सभी उस वरदान का उपभोग करते थे। देश के राष्ट्रभक्त लेखकों व कवियों ने इस स्वर्णयुग का—जो लगभग १,००० साल तक क़ायम रहा—सुन्दर शब्दों में वर्णन किया है। भविष्यपुराण लिखता है:—

'ग्रामे ग्रामे स्थितो देव. देशे देशे स्थितो मखः।
गेहे गेहे स्थितं द्रव्यं धर्मश्चैव जने जने॥
(भविष्यपुराण प्रतिसर्गपर्व)

अर्थात् ग्राम ग्राम में देवपुरुषों का वास है। देश देश में यज्ञ होता है। घर घर में धन की प्रचुरता है और मनुष्य मनुष्य मे धर्म का आवास है।

सिंहल (लंका) से काश्मीर पर्यन्त एक ही राजवंश के राजा राज्य करते रहे। वे सब अन्तर्विवाह से सम्बन्धित थे। उनकी एक ही प्रथायें थी और एक ही संस्कृति के सब उपासक थे। उस समय सम्पूर्ण राष्ट्र के जीवन मे एक दिव्य समता आगई थी। राष्ट्रभाषा के विकास का वही सर्वश्रेष्ट समय था। हमारे राष्ट्रीय जीवन की अन्दरूनी एकता का एक राष्ट्रभाषा के विकास के अतिरिक्त और कौन सा सुन्दर परिणाम हो सकता था !

स्वर्णयुग की इस दीर्घकालीन शान्ति और समृद्धि का परिणाम वही हुआ जो प्रायः चोटी पर पहुंची हुई जातियों का होता है। इतिहास मे इस सचाई की अनेक साक्षियां मौजूद हैं कि इतने उत्कर्ष के बाद ही जातियों का पतन होता है। सिंधुस्थान के वासी भी इस लम्बे शान्तिमय काल के बाद अपने को सदा सुरक्षित समझने लगे और चिरकालीन समृद्धि में रह कर वे जीवन के संघर्ष को भूलकर स्वप्न संसार में विचरने लगे। उनकी स्वप्न निद्रा एक दिन अचानक ही मुहम्मद गजनी ने भंग कर दी। वह सिन्धु नदी का तट पार करके हिन्दुस्तान पर चढ़ आया। उस दिन फिर जीवन और मृत्यु का संघर्ष शुरू हो गया। समस्त हिन्दुस्तान

को एक शत्रु का मुक़ाबला करना पडा । जातियों के इतिहास में ऐसे ही समय उन्हें राष्ट्र बनने और संगठित होकर शत्रु का मुकाबला करने की प्रेरणा देने वाले होते हैं। वे अपनी विभिन्नताओं को भूल कर एक सूत्र में बन्ध जाते हैं। यही समय हिन्दुस्तान में उस समय आया जब पश्चिम दिशा में आँधी उठी और सिन्धु नदी के पार आ गई। इससे पूर्व कासिम ने भी सिन्धु के तट को पार किया था। किन्तु उसकी चोट में हिन्दुस्तान केवल ऊपर से ही ज़ख्मी हुआ था। शरीर के भीतर उसको आघात नहीं पहुंचा था। संघर्ष फिर से महमूद के समय शुरू हुआ और अब्दाली तक रहा। बरसों तक यही कशमकश जारी रही। जो आँधी अरब, ईरान, मिश्र, सीरिया, अफगानिस्तान, बलूचिस्तान में फैल गई थी जिस इस्लामी तलवार के आगे राष्ट्र और सभ्यता, धराशायी होती गयी, वही हिन्दुस्तान पर भी चली। उसने हिन्दुस्तान के शरीर पर भी घाव कर दिया। किन्तु उस के दिल पर चोट न कर सकी। हर बार वह घाव करती थी और कुंण्ठित हो जाती थी। घाव भर जाता था। हिन्दुस्तान एक अतुल बलशाली शत्रु से मुकाबला कर रहा था। वह एक राष्ट्र से नहीं, एक जाति से नहीं, बल्कि सम्पूर्ण एशिया से सामना कर रहा था। वह एक ऐसे आक्रान्ता से लोहा ले रहा था जो एशिया के बाद युरोप के भी बड़े हिस्से को पैरों तले कुचल चुका था। उस मे अरब, पर्शियन, पठान, बलूची, तारतार, टर्क और मुगल जाति के खूनी लडाकू शामिल थे। मजहब की शक्तिशाली प्रेरणा उन्हे विजयी बना रही थी। मजहब एक जबर्दस्त ताकत है। लूट भी। किन्तु मज़हब को लूट की प्रेरणा मिल

रही हो और लूट मज़हब की प्रेयसी का काम कर रही हो, वहाँ दोनों के सम्मिलन से जो भयंकर प्रेरक शक्ति पैदा होती है, उसकी समानता केवल उसी भयंकर सर्वनाश और प्रलयंकर विनाश से दी जा सकती है। जोड़ शक्ति का परिणाम होता है। स्वर्ग और नरक दोनों की शक्तियां मिल कर भूमण्डल के लिये इतनी संहारकारी हो गयीं थीं कि हिन्दुस्तान भी महम्मद के आक्रमण से एक बार चौंक उठा। दिन दिन वह युद्ध भयंकर होता गया बरसों तक हिंदुस्थान उस आँधी का मुकाबला करता रहा। नैतिक और सैनिक युद्धों का तारतम्य बना रहा। हमें उस दिन नैतिक विजय प्राप्त हुई, जिस दिन सम्राट् अकबर गद्दी पर बैठा और दारा शिकोह का जन्म हुआ। औरंगज़ेब ने मुगलों पर हिन्दुत्व की उस नैतिक विजय को निस्तेज करने के लिये अमानुषिक प्रत्याचार किये। किन्तु हमारी विजय अधिकाधिक विस्तार पकड़ती गयी। हम सैनिक क्षेत्र में भी विजयी होते गये। आखिर 'भाऊ' ने मुगल साम्राज्य की छत की कड़ियां हिला दीं। पानीपत की लड़ाई के बाद कोई 'अफगान' हिन्दुस्थान पर आक्रमण करने का साहस नहीं कर सका। जिस हिन्दू पताका को मराठे वीर अटक तक ले गये थे: उस को सिक्खों ने थाम लिया और वे उसे काबुल तक ले गये।

मुगलकालीन इन युद्धों से हमारा हिन्दुत्व बहुत चैतन्य होगया था। हम फिर राष्ट्रीयता की इतनी मज़बूत रस्सी में बंध गये कि जो इतिहास में अपूर्व घटना थी। स्मरण रहे कि हम हिन्दुओं के विभिन्न मतों व दलों की नहीं, बल्कि सम्पूर्ण हिन्दुत्व की प्रगति का जिक्र कर रहे हैं। हमने हिन्दुवाद का नहीं, अपितु हिन्दुत्व

के इतिहास का कुछ वर्णन किया है। सनातनी, सतनामी, सिख, आर्य, अनार्य, मराठा, मद्रासी, ब्राह्मण और पंचम सभी हिन्दुत्व की विजय के साथ विजयी और हिन्दुत्व की हार के साथ पराजित होते थे। उनका और हिन्दुत्व का स्वार्थ कभी जुदा नहीं बना। सभी हिन्दू व हिन्दुस्तान नाम को हमारे देश के अन्य पर्यायवाची नामों से अधिक प्रधानता देते रहे। आर्यावर्त्त, दक्षिणापथ, जंबुद्वीप और भारतवर्ष सभी नाम एक हिन्दुस्तान नाम के आगे मन्द पड़ चुके थे। एक हिन्दुस्तान नाम ही हमारी उस राष्ट्रीय व सांस्कृतिक एकता को प्रगट करता था, जो समय की सबसे बड़ी आवश्यकता थी। शत्रु हमें हिन्दू कह कर ही नफ़रत करते थे और उनकी नफ़रत हमें, जो अटक से कटक तक हिन्दू सन्तान थी, अधिकाधिक एक और अखण्ड बनाती जाती थी। हमें दुःख है कि किसी इतिहासकार ने सन् १३०० से १८१० ईसवी तक के हिन्दू इतिहास का अध्यायन इस दृष्टि से नहीं किया। काश्मीर से लंका तक और सिन्धु से बंगाल तक रहने वाले हिन्दुओं की तत्कालीन प्रगतियों के गहरे अध्ययन की आवश्यकता है। उन प्रगतियों के उतार-चढ़ाव के अलावा उनकी केन्द्रित भावना का भी अध्ययन करना चाहिये। वह भावना हिन्दू धर्म व हिन्दुत्व की रक्षा अथवा हिन्दुस्थान राष्ट्र के मान रक्षा की भावना थी, न कि हिन्दुवाद की रक्षा की। वही भावना समूचे हिन्दुस्थान को, साम्प्रदायिक, प्रान्तिक व जातीय भेदों को छोड़ कर ही शत्रु से लड़ा रही थी। हिन्दुत्व शब्द हमारे सम्पूर्ण राष्ट्रीय शरीर की रीढ़ की हड्डी का काम दे रहा था। मालाबार के नायर और काश्मीर के

ब्राह्मण उसी एक शरीर के दो भाग थे। दोनों के सुख दुःख भी एक थे। मालाबार के दुख पर काश्मीर दुःखी होता था और काश्मीर की पीडा पर मालाबार मे हलचल मच जाती थी। हिन्दू शब्द मे हमारे सब सम्प्रदाय मत व प्रान्त एक हो जाते थे। हमारे कवियों ने हिन्दुस्थान की पराजय पर किसी प्रान्त की पराजय के दुःखपूर्ण राग नहीं लिखे बल्कि हिन्दूमात्र की पराजय पर आँसू बहाये हैं। हमारे गुरुओं ने हिन्दू भावना को जीवित करने की कोशिश की। हमारे योद्धा हिन्दू संग्राम मे कुर्बान हुये, हमारे सन्त महात्माओं ने हिन्दू मात्र को आशीर्वाद दिया. हमारे राजनीतिज्ञ हिन्दू राज्य की नींव रखते रहे हमारी मातायें हिन्दू घाव पर मरहम रखती रहीं और हिन्दू विजयो पर गौरवान्वित होती रही हैं।

अपने कथन की अक्षरशः पुष्टि के लिये हम अपने पूर्वजो के लेखो और वाक्यों से असंख्य उद्धरण पेश कर सकते हैं। किंतु स्थानाभाव हमें थोड़े से उद्धरण पेश करके ही सन्तोष मानने पर बाधित करता है।

हिन्दी मे लिखे गये सब ऐतिहासिक ग्रन्थों मे 'पृथ्वीराज रासो' जिसे चन्दबरदाई ने लिखा था, सबसे प्राचीन और प्रामाणिक माना जाता है। उससे पूर्व केवल एक काव्य ही लिखा गया। आश्चर्य यह है कि उसमे भी 'हिन्दुस्तान' का स्मरण बड़ी श्रद्धा और राष्ट्रीय भावना से किया गया है। वह कविता चन्दबरदाई के पिता वेन' ने अजमेर के राजा, पृथ्वीराज के पिता, को सम्बोधन करके लिखी है:—

अटल ठाट महिपाट, अटल तारागढथानं
अटल नग्र अजमेर, अटल हिंदव अस्थान
अटल तेज परताप, अटल लंकागढ डंडिय
अटल आप चहुवान, अटल भूमिजस मंडिय
संभरी भूप सोमेस नृप, अटल छत्र ओपै सुसर
कविराज वेन आसीस दे, अटल जगां रजेसकर

हिन्दी भाषा के आदिकवि चन्दबरदाई ने हिंदी, हिंदुवान और हिन्द शब्द का इतनी बार प्रयोग किया है कि हमें इन शब्दों के, उस काल मे अत्यन्त लोकप्रिय होने में कोई सन्देह नहीं रह जाता। यह ११ वीं सदी की बात है। उस समय तक मुसलमान अभी पञ्जाब पर अधिकार नहीं कर पाये थे। यदि 'हिन्दू' शब्द मुसलमान काल की उपज होती तो यह कब मुमकिन हो सकता है कि ११ वीं सदी के राजपूत अपने शत्रुओं द्वारा आविष्कृत नाम को कबूल ही न करें बल्कि उसे पूज्य भावना से देखें और उसे ही अपना राष्ट्रीय नाम स्वीकार कर लें? पृथ्वीराज द्वारा शहाबुद्दीन की गिरफ्तारी और इस शर्त पर कि वह पुनः भारत पर आक्रमण नहीं करेगा—रिहाई का वर्णन करते हुए कवि चन्दबरदाई लिखते हैं—

"राखि पंचदिन साहि अदब आदर बहु किन्नौ
सुज हुसेन गाजी सुपूत हथ्थै ग्रहि दिन्नौ
किय सलाम तिनवार जाहु अपन्ने सुथानह
मति हिंदुपर साहि सज्जि आऔ स्वस्थानह"

(पृथ्वीराज रासो स० ६)

किन्तु शहाबुद्दीन ने फिर भी हिन्दू पराक्रम के आगे सिर नहीं झुकाया। उसके हमले बराबर जारी रहे। घमासान युद्ध होता रहा। युद्ध का वर्णन इन शब्दों मे किया गया है:—

"जब हिंदुदल जोर हुअ छुट्टि मीरधर भ्रम
असमय अरवस्तान चला करन उद्धसाक्रम"

"जुरे हिंदु मीरं, बहे खग्ग तारं
मुखे मारमारं, बहे सूरसारं।
हिंदु म्लेच्छ अघाइ घाइन,
नंचि नारद युद्ध चायन ॥"

शहाबुद्दीन ने हिन्दुओं को कुचलने की सिर तोड़ कोशिशें कीं किन्तु कामयाब नहीं हुआ। विजयश्री हिन्दुओं के हाथ लगी। पृथ्वीराज के सेनानी 'पज्जूनराय' ने शहाबुद्दीन को फिर गिरफ़्तार कर लिया। कवि ने इस विजय पर ख़ुशी ज़ाहिर करते हुए पृथ्वीराज को इन शब्दों में बधाई दी:—

"आज भाग चंहुआन घर,
आज भाग हिंदवान।
इन जीवित दिल्लीश्वर,
गंज न सक्कै आन।"

एक बार फिर शपथ लेकर शहाबुद्दीन मुक्त हो गया और एक बार फिर अपना वचन भंग करके दिल्ली पर चढ़ आया। 'हिंदपति' पृथ्वीराज ने युद्ध कौंसिल बुलाई। दरबार के रावल-सामन्त क्रोध से आग बबूला हो गये। उस समय चामुण्डराय ने शहाबुद्दीन के राजदूत को कहा था कि शहाबुद्दीन को उस धरती की याद दिलाना जिस पर नाक घिस कर उसने शपथ ली थी:—

"निर्लज्ज म्लेच्छ लजै नहीं। हम हिन्दु लजवान।"

फैसले का दिन निकट आ गया था। 'हम्मीर' के पतन के पूर्व कवि चन्दबरदाई ने 'दुर्गा' माई से निम्न शब्दों में बहुत ही मार्मिक और देशभक्ति पूर्ण प्रार्थना की थी:—

"दुग्गे हिंदुराजान बंदीन आयं।
जपै जाप जालंधरं तूं सहायं॥
नमस्ते नमस्ते इ जालन्धरानी।
सुरं आसुरं नागपूजा प्रमानी॥"

आखिर युद्ध के परिणाम और युद्ध के बाद उस घटना का, जब पृथ्वीराज ने शहाबुद्दीन को मौत के घाट उतारा था, वर्णन करते हुए कवि ने अँतिम हिन्दू सम्राट् के प्रति निम्न शब्द लिखे थे: —

धनि हिन्दु प्रथिराज, जिने रजवट्ट उजारिय
धनि हिन्दु प्रथिराज, बोल कलि मभ्भ्फ उगारिय
धनि हिंदु प्रथिराज, जेन सुविहानह संध्यो
बारबारह ग्रहिसुक्कि, अंतकाल सर वंध्यो"

यह बात स्मरणीय है कि यद्यपि 'भारत' शब्द रासो मे कई दफ़ा आता है किन्तु उसका अभिप्राय 'भारतवर्ष' देश से कहीं भी नहीं है। उसका अर्थ 'महाभारत' से है। जो बात हमारे हिन्दी के इस सर्वप्राचीन ग्रन्थ 'रासो' मे है, वही उस काल के सम्पूर्ण साहित्य में है। तब से 'हिन्दुत्व' के पुनर्जीवन पर्यन्त सब ग्रन्थों में अपने देश को हिन्दुस्थान ही कहा गया है। तत्कालीन महात्मा समर्थ रामदास ने भी एक कविता मे अपनी भविष्यवाणी कहते हुए लिखा है:—

स्वप्नीं जें देखिलें रात्रीं, तें तें तैसेंच होतसें
हिंडतां फिरतां गेलों, आनन्दवनभूवनीं ॥१॥
बुडाले सर्वही पापी, हिंदुस्थान बलावलें
अभक्तांचा क्षयो झाला, आनन्दवनभूवनीं ॥२॥
कल्पांत मांडिला मोठा, म्लेच्छदैत्य बुडावया
कैवाड घेतला देवीं, आनन्दवनभूवनीं ॥३॥
येथून वाढला धर्म, राजधर्मासमागमें
सन्तोष मांडिला मोठा, आनंदवनभूवनीं ॥४॥
बुडाला औरंग्या पापी, म्लेच्छसंहार जाहला
मोडिली मांडिलीं छत्रें, आनन्दवनभूवनीं ॥५॥
बोलणें वाउगें होतें, चालणें पाहिजे बरें
पुढें घडेल तें खरें, आनन्दवनभूवनीं ॥६॥
उदंड जाहलें पाणी, स्नानसन्ध्या करावया
जपतप अनुष्ठानें, आनन्दवनभूवनीं ॥७॥
स्मरलें लिहिलें आहे, बोलता चालता हरी
राम कर्ता राम भोक्ता, आनन्दवनभूवनीं ॥८॥

अर्थात् मैंने रात्रि के समय जैसा स्वप्न देखा वह स्वप्न वैसे ही पूरा हो रहा है। मैंने देखा कि हिन्दुस्तान फिर उठ खड़ा हुआ है और जो उससे घृणा करते थे अथवा जिन्होंने भगवान के प्रति पाप किया था उन्हें शक्ति से कुचल दिया गया। हिंदुस्थान सचमुच पावन और आनन्दभूमि है। क्यों कि ईश्वर ने भारत के ध्येय को अपना ध्येय बना लिया है इसलिए

औरंगजेब की पराजय हो गई है। राज्यच्युत राजाओं को राजमुकुट मिल गया है। और राजगद्दियों वालों की गद्दियां छिन गई है। अब धर्म को राज्य का आश्रय मिल गया है। अब फिर हिंदुस्थान गौरवान्वित होगा। कुछ भी हो, राम ने फिर इस देश को आनन्दवन बना दिया है।

तात्कालीन राजकवि भूषण ने 'हिंदवान' को उत्तेजित करने के लिये बहुत काव्य बनाये। वीर शिवाजी की सेनाओं को उभारने का काम वही करता था। उसने एक स्थल पर औरङ्गजेब को ललकारते हुए कहा:—

'लाज धरौ शिवजी से लरौ सब सैयद सेख पठान पठायके।
भूषन ह्या गढकोटन हारे उहा तुग क्यो मठ तोरे रिसायके॥
हिंदुन के पति सों न बिसात सतावत हिंदु गरीबन पायके।
लीजे कलंक न दिल्ली के बालम आलम आलमगीर कहायके॥

अर्थात् हे औरंगजेब! अगर तुम्हे लाज है तो हिंदपति शिव जी से लड़ो, गरीब हिंदू प्रजा को क्यों सताते हो? मठ-मन्दिरों को क्यों तोडते हो? लडना है तो दुर्गों को फतह करो। तुम कितने ही दुर्ग हार चुके हो। तुम्हें आलमगीर कहाते शर्म नहीं आती? आलमगीर (विश्वविजयी) बनने से पूर्व शिवाजी से तो लड़लो।

× × × × ×

एक और स्थान पर भूषण कहता है:—

"जगत में जीते महावीर महाराजन ते—
महाराज बावन हूँ पातसाह लेवाने।
पातसाह बावनो दिल्ली के पातशाह दिल्लीपति
पातसाह जीसो हिंदुपति सेवाने।"

"दाढ़ी के रखैयन की दाढ़ी सी रहति छाति
बाढ़ी जस मर्याद जस हद्द हिंदुवाने की
कढ़ि गयि रयित के मन की कसक सन,
मिट गयी ठसक तमाम तुरकाने की
'भूषण' भनत दिल्लीपति दिल धकधका,
सुनि सुनि धाक सिवराज मरदाने की
मोटी भयि चंडी बिन चोटी के चबाय सीस,
खोटी भयि संपति चकता के+ घराने की।"

शिवाजी के विजयों का गुणगान करते हुए भूषण कवि कहते हैं:—

राखी हिंदुवानी, हिंदुवान के तिलक राख्यो,
स्मृति और पुराण राख्यो, वेद विधी सुनि मैं
राखी रजपूती राजधानी राखी राजन की,
धरा में धरम राख्यो राख्यो गुण गुणी मैं
भूषण सुकवि जीति हद्द मरहट्टन की,
देसदेस कीरति बखानि तव सुनि मैं

+ बाबर के घराने की।

साहि के सुपूत सिवराज समसेर तेरी,
दिल्ली दल दाबिके, दिवाल१ राखि दुनि में ॥

हिन्दुस्थान में शिवा जी की कीर्त्ति का यही कारण था कि वे महाराष्ट्र प्रान्त के लिये नहीं बल्कि समस्त हिन्दूराष्ट्र के लिये एक विदेशी राजा से लड़ रहे थे। भूषण स्वयं महाराष्ट्रीय नहीं था। फिर भी वह शिवाजी से बाजीराव तक के वीर मराठों का कीर्त्ति गान करता था। उसके गीत हिन्दुस्थान राष्ट्र की राष्ट्रीय भावनाओं से भरे हुए हैं। वीर मराठों की कीर्त्ति के बाद उसने बुन्देल राज्य के राजा का यश गाया है। वह कहता है—

हवर,२ हरट्ट३ साजि, गैवर४ गरट्ट५ सम।
पैदर थट्ट फौज तुरकान की ॥
भूषण भनत राय चंपति को छत्रसाल
रोप्यो रनख्याल ह्वै के ढाल हिंदुवाने की"

'छत्रसाल' भी शिवाजी, राजसिंह, गुरुगोविन्दसिंह के समान ही वीर था। वह भी अपने को हिन्दुत्व के रक्षकों में मानता था और उसकी रक्षा के लिए जान की बाजी लगाये था:—

"जबते शाह तखतपर बैठे। तब तै हिंदुन सौ उर ऐठे।
महगेकर तीरथनि लगाये। वेद देवाले निदर ढहाये।
सब रजपूत सीर नित नावै। ऐड करे नित पैदल धावै।
ऐड एक शिवराज निवाही। करै आपके चित्तकि चाही।
आठ पातसाही झुक झोरै। सूबनि बाँधि डांड लै छोरै।"

---

१. देवालय। २. घोड़े। ३. हृष्टपुष्ट। ४. गजवर। ५. संघ।

एक बार छत्रसाल ने शिवाजी से भेंट की थी। वह भेंट इतिहास में विख्यात है। भूषण के शब्दों में शिवाजी ने उससे कहा था:—

"तुम छत्री सिरताज। जीत आपनी भूमि कौ करौ देश को राज॥"

छत्रसाल शिवाजी से भेंट करने के बाद सुजानसिंह से मिला जो बुन्देलखंड का एक शक्तिशाली राजपूत राजा था। बातचीत के सिलसिले मे सुजानसिंह ने देश की राजनीतिक अवस्था का बहुत मार्मिक चित्र खींचा —

"पातसाह लागे करन, हिंदू धर्म कौ नासु,
सुधि करि चंपतराय की, लइ बुन्देला सासु।
जब तैं चंपति करयौ पयानौ, तबतैं परयो हीन हिंदुवानौ,
लग्यो होग तुरकजको जोरा, को राखे हिंदुन को तोरा।
अब जो तुम कटि कसौ कृपानी, तौ फिर चढ़े हिंदुमुख पानी"

सुजानसिंह ने यह कह कर अपनी तलवार छत्रसाल को भेंट की। उस समय का वर्णन कवि ने इन शब्दों में किया है:—

यह कहि प्रीति हिये उमगाई। दिये पान किरवान बधाई।
दोऊ हाथ माथपर राखे। पूरन करौ काज अभिलाखे।
हिंदुधरम जग जाइ चलावौ। दौरि दिलीदल हलनि हलावो॥

(छत्र प्रकाश)

सिक्खों के गुरु तेग बहादुर ने भी हिन्दुत्व की रक्षा का बीड़ा उठाया था। उन्होंने इसकी रक्षा के प्रयत्न में अपने प्राणों

की भी बलि दे दी। काश्मीर के ब्राह्मण इस्लाम के अत्याचारों से तंग आकर उनकी सेवा में पहुंचे तो उन्होने उनसे कहा था।—

तुम सुनो दिजेसु ढिग तुर्केसु अवेसु इमगावो।
इक पीर हमारा हिंदु भारा भाईचारा लख पावो॥
है तेग़ बहादुर जगत उजागर ता आगर तुर्क करो।
तिस पाछे दव ही हम फिर सब ही बन है तुरक भरो॥

(पंथ प्रकाश)

अर्थात् हे ब्राह्मणो ! तुम जाकर निर्भय होकर तुर्कों (मुसलमानों) से कहदो कि हमारा एक महान नेता तेग़ बहादुर है। जिसके लाखों ही अनुयायी है। वह जगत भर को रोशनी देने वाला है। अगर तुम उसे तुर्क बना लो तो हम भी बन जायंगे।

जब शत्रु ने गुरु तेग़बहादुर को पकड़ लिया और उन्हें इस्लाम कबूल करने को कहा तो गुरु ने कवि के शब्दों मे यह कहा:—

तिन ते सुन श्री तेग बहादुर। धर्म निबाहन विषे बहादुर
उत्तर भनयों धर्म हम हिंदु। अति प्रिय को किम करे निकंदु"

(सूर्यप्रकाश)

उनके पुत्र गुरु गोविन्दसिंह ने फिर हिन्दू-ध्वजा पंजाब भर में फहरादी। वह शूरवीर थे, कवि थे और हिन्दू धर्म के सच्चे संरक्षक थे। उन्हों ने घोषणा करदी थी:—

सकल जगत में खालसा पंथ गाजे।
जगे धर्म हिन्दु सकल भंड भाजे॥

'शिव छत्रपतीचें चरित्र' नामक पुस्तक में शिवाजी की जीवनी लिखते हुए इतिहासकार लिखता है:—

"शिवाजी चे मनात आलें, जे आपण हिंदु, सर्व दक्षिण देश यवनांनीं पादाक्रांत केला। त्रेत्रास पीड़ा केली। हिन्दुधर्म बुडविला। प्राण हो देऊन धर्म रक्षूं। आपले पराक्रमें नवीन दौलत संपादूं। तें अन्नभक्षूं"

अर्थात् शिवाजी ने सोचा 'हम हिन्दू हैं। मुसलमानों ने सम्पूर्ण दक्षिण पर प्रभुत्व कर लिया है। उन्होंने हमारे धर्म मन्दिरों को अपवित्र किया है। वास्तव में उन्हों ने हमारे धर्म को भ्रष्ट कर दिया है। इसलिए हम प्राणों की आहुति देकर भी धर्म की रक्षा करेंगे। हम शक्ति से नवीन राज्यों का लाभ करके और उन्हीं का अन्न खायेंगे।

किन्तु दादा ने राय दी—

'आपण म्हणता तें कार्य चागलें खरें, पण याचा शेवट लागणें परम दुष्कर। यास मातबर स्थलें असावीं। हिन्दुराजे व हिंदुफौजा जागजागीं साह्यकर्त्या असाव्या। ईश्वराचें अनुकूल व सिद्ध पुरुषाचा आशीर्वाद असतां अशा गोष्टी घडतील"।

(चिटणीस-बखर)

अर्थात् 'तुम्हारे विचार बहुत उत्कृष्ट हैं। किन्तु उन्हे क्रियात्मक रूप देना नितान्त कठिन है। सर्वप्रथम तुम्हें अपने राज्य के शक्तिशाली केन्द्र स्थापित करने होंगे। हिन्दू राजाओं और योद्धाओं को स्थ न स्थान पर सहायता भेजनी होगी। ईश्वर के आशीर्वाद और सिद्ध पुरुषों के आशीर्वाद से ही यह कार्य सम्पन्न होगा।

शिवा जी के अधीन हिन्दू शक्ति के पुनरुत्थान ने समस्त हिन्दुस्थान के हिन्दू हृदयों में नया जागरण और नई स्फूर्त्ति भर दी। अत्याचार पीडित हिन्दू शिवा जी को अवतार मानने लगे। सावनूर ज़िला की पीड़ित प्रजा ने शिवा जी से इन शब्दों में संरक्षा की अपील की थी—

"हा युसुफ फार खस्त आहे। बायकापोरांस उपद्रव देणें। जुलूम, गोवधादि निंद्य कर्म आम्ही त्याचे हाताखाली वागण्यास कंटाललों। तुम्ही हिन्दुधर्माचे संस्थापक। म्लेच्छाचे नाशक। म्हणून तुम्हांकडे आलों। तुम्हाकडे आम्ही आलों म्हणून आमचे द्वारा चौकी बसली आहे। अन्नपाण्यावांचून जीव घेण्यास उद्युक्त झालेआहेत। तरी रात्रीचा दिवस करून येणें"

अर्थात्—यह युसुफ बहुत दुष्ट है। वह स्त्रियों और बच्चों पर भी जुल्म करता है। गायों का वध करता है। हम उसके अधीन नहीं रहना चाहते। आप हिन्दू धर्म का पुनरुद्धार करने वाले हैं और म्लेच्छों के नाशक हैं। इसी लिए हम आपकी शरण आये हैं। हम पर चौकी रखी जाती है। वह हमें बिना अन्न-जल के मारना चाहता है। इस लिये आपसे विनय है कि आप आकर हमारी अंधेरी रातों को उजला करो।

शिवा जी का लक्ष्य राज्योपभोग नहीं बल्कि हिन्दू धर्म की स्थापना था, इसके और भी प्रमाण हैं। शिवाजी ने जहाँगीर का क़िला जब अपने भाई व्यंकोजी को, जो उस समय तंजोर में थे, इस शर्त पर दिया कि वह मुसलमानों के प्रभुत्व को स्वीकार न करेगा। शिवाजी ने लिखा था कि—

'दुष्ट हिंदुविद्वेषी यास आपले राज्यात ठेवूं नये।'

अर्थात्—हिंदू विद्वेषियों को राज्य में पग न धरने देना।

राजाराम ने संता जी और उनके भाईयों की राष्ट्रीय सेवाओं से प्रभावित होकर 'बहीर जी' को 'हिंदूराव' की उपाधि प्रदान की थी। जब 'जिंजी' के दुर्ग में मराठे घिरे हुए थे और शत्रु सेना दुर्ग में प्रवेश करने का प्रयत्न कर रही थी, उस समय फिर मराठों ने उन मराठो को, जो मुगल सेनापतियों के अधीन लड़ रहे थे, अपनी ओर मिलाने का प्रयत्न किया।

"नागो जी राजे याजकडे संधान केलें। तुम्ही आम्ही एक झाल्यास ही फौज मोडून हिंदु-धर्म जतन करूं। त्यापक्षीं तुम्ही फुटन आम्हाकडे यावें"। तेव्हा नागोजीराजे मुसलमानी नोकरी सोडून, मोर्चे उठवून शहरात ५००० फौजेनिशी गेले.........शिर्के हे मोगलाचे तावेदार बनले (कारण त्याचें संभाजीनें शिरकाण केलें)। तेव्हां खंडोवल्लाल म्हणाले, "तुमचें शिरकाण केलें। तसेंच आमचेही तीन पुरुष हत्तीपायीं मारविले। परन्तु हिन्दुच्या दौलतींकरितां आम्ही झटत आहोंत। तुम्ही तों भागीआहा"। तेव्हां शिर्के पण कारस्थानांत आले। व मराठ्यास मिलून जिंजीहून राजाराम शत्रूच्या वेढ्यास तोडन सुटन गेले।"

अर्थात् नागोजी राजे से गुप्त रूप से यह बात चीत हुई थी कि अगर तुम मराठा फौज मे शामिल हो जाओ तो मराठे शत्रु पर विजय पालेंगे और हिन्दू धर्म की रक्षा हो जायगी इसलिए तुम्हे हमारे साथ आकर मिल जाना चाहिए। तब

नगोजी राजे ने मुसलमानों की नौकरी छोड़दी और ५००० सवारों के साथ शहर में प्रवेश किया। तब 'शिर्के' मुगलों का दावेदार बन गया। कारण, उसके कुटुम्ब का सम्भा जी ने बध करवाया था। उस समय खंडो जी बल्लाल ने 'शिर्के' को यह युक्ति दी थी कि "तुम्हारे कुटुम्बियों का बध ज़रूर हुआ। हमारे भी तीन पूर्वजों को हाथियों के पैरों से कुचलवा दिया गया था, किन्तु इस समय व्यक्तिगत स्वार्थ साधन का समय नहीं है, हिन्दू राष्ट्र की रक्षा का प्रश्न है। इस उद्योग मे तुम्हे हमारे साथ आ मिलना चाहिये।" इस युक्ति से प्रभावित होकर शिर्के मराठों से मिल गया। परिणाम यह हुआ कि राजा राम शत्रुओं का घेरा तोड़ कर भाग निकलने में सफल हो गया।

एक बार शाहू और सवाई जयसिंह के बीच इसी प्रश्न पर बहुत बहस हुई थी कि—

"हिन्दूधर्माचें रक्षणासाठीं मी काय व तू काय केलेस"

(सरदेसाई-मध्यविभाग)

अर्थात् हिन्दू धर्म की रक्षा के सवाल पर 'म' 'तू' का भेद नहीं है।

यही भावना बाजीराव और नाना साहब की सन्तान में थी। इतिहासकार लिखता है :—

"पुष्कालानी बाजीरावाच्याच उद्योगाचें अनुकरण व परिपोष केलेला दिसतो . ब्रह्मेंद्रस्वामी, गोविंद दीक्षित वगैरे देशभर यात्रा करून अनुभव घेतलेल्या साधुपुरुषाच्या ठिकाणीं वरील 'हिंदूपदपादशाहोची'

भवाना स्फुरण पावत होती व ते आपल्या सर्व शिष्यवर्गास याच भावनेनें 'उपदेशीत होते' (सरदेसाई) । बाजीराव स्वतः म्हणतात—
"अरे बघतां काय ? चला जोरानें चाल करून । हिंदुपदपादशाहीस आता उशीर काय ?" (बाजीराव)

अर्थात् ऐसा प्रतीत होता है कि औरों ने भी बाजीराव द्वारा आरंभ किए गए महान कार्य मे उसका साथ दिया। हिन्दू पदपादशाही की भावना ब्रह्मेंद्र स्वामी, गोविंद दीक्षित आदि साधु पुरुषों मे भी थी। उन्होंने इस भावना को देश भर मे घूमकर फैलाया और अपने शिष्यों को भी इसी की दीक्षा दी। (सरदेसाई) बाजीराव के शब्द हैं, "विलंब क्यों करते हो । शक्ति का पूरा प्रदर्शन करो और आक्रमण करो । तब हिन्दूपद-पादशाही (हिन्दूराज) तुम्हारे हाथों मे है !"

ब्रह्मेन्द्र स्वामी उस समय के विद्वानों के अग्रणी थे । उनकी हिन्दूधर्म में भक्ति के सम्बन्ध में इतिहासकार लिखता है: —

"परन्तु हिन्दू धर्माचा उच्छेद ज्या राज्यात होतो त्यास भेटणें स्वामीस योग्य वाटलें नाही !........हिंदूंच्या साम्राज्यात देवा ब्राह्मणाचा छळ होणें ही गोष्ठ किती लज्जास्पद आहे ही गोष्ट त्यानें शाहूच्या मनांत भरवून दिली ।"

(सरदेसाई)

अर्थात् ब्रह्मेन्द्र स्वामी उस राजा से भेंट करना भी पसन्द नहीं करते थे जिसके राज्य मे हिन्दूधर्म का तिरस्कार होता हो।

उन्होंने शाहू को कहा था कि 'यह बात कितने शर्म की है कि हिंदू साम्राज्य में ही देवताओं और ब्राह्मणों पर जुल्म हो'—

मथुरा बाई ने स्वामी ब्रह्मेन्द्र का लिखा था:—

"शंकराजी मोहिते, गणोजी शिंदे, खंडोजी नालकर, रामाजी खराडे, कृष्णाजी मोड इत्यादि मातबर सरदारानीं राज्यरक्षण करून शामलांचा मोड केला व कोंकणांत हिन्दुधर्म राखला।"

अर्थात्, शंकराजी मोहिते, गणोजी शिंदे, खंडोजी नालकर, रामाजी खराडे, कृष्णाजी मोड इत्यादि सरदारों ने राज्य की रक्षा की, मुसलमानों का नाश किया और कोंकण में हिन्दु धर्म को बचाया।

मथुराबाई आंग्रे के पत्र धर्म व देश भक्ति से इतने भरपूर हैं कि तत्कालीन हिन्दूधर्म के पुनरुत्थान का इतिहास पढ़ने वालों को उन पत्रों का अध्ययन अवश्य करना चाहिये।

'गोआ' में पोर्चुगीज़ ने भी हिन्दू धर्म को कुचलने की बहुत कोशिश की। उनका दमन यूरोप के दमन का भारतीय संस्करण था। उन्होंने हिंदुओं के धार्मिक व्यवहारों के सार्वजनिक प्रदर्शनों पर रोक लगा दी। तब जनता के नेता अन्ताजी रघुनाथ ने उस रोक का भंग किया तथा अन्य हिंदुओं को भी इस अनुचित धार्मिक हस्तक्षेप के विरुद्ध क़ानून-भंग के लिये उत्तेजित किया। वह जानता था कि उस समय निष्क्रिय सविनय आज्ञा-भङ्ग केवल निष्क्रिय कष्ट सहन है। उन हालतों में बाजीराव और चिमनाजी अप्पा

की तलवार ही सफल हो सकती थी। आखिर पुर्त्तगाल-भारत में अँताजी रघुनाथ ने विद्रोह का झंडा खड़ा कर दिया। उसने सब हिंदू नेताओं की हमदर्दी से बाजीराव की अध्यक्षता में ज़बर्दस्त सङ्गठन किया। मराठों ने पुर्तगाल-भारत पर आक्रमण कर दिया। चिमनाजी आप्पा ने विजय प्राप्त की और हिंदू क्षेत्रों को स्वाधीन करा लिया।

किन्तु इसी बीच, वसई के पतन से पूर्व ही, नादिरशाह ने हिंदुस्थान पर चढाई कर दी। दिल्ली पर उसका अधिकार हो गया। तब बाजीराव के मराठा दूत ने उसको लिखा कि:—

"तहमास्पकुलीखान काहीं देव नाहीं जे पृथ्वी कापून काढील। जबरदस्ताशीं सुलुख करील। म्हणून मातबर फौजेनिशीं यावें। आधीं जबरदस्ती व मग सुलुख, आतां सारे राजपूत व स्वामी (बाजीराव) एकजागा झालिया निकाल पडेल। समस्तांस (हिंदूंस) बुंदेले वगैरे एक जागा करून मोठा भाव दाखविला पाहिजे। नादिर शाहा माघारा जात नाहीं हिंदु राज्यावरी निघेल...रायाँचे (सवाई जयसिंग) मनीं राणा-जीस तख्तावर बसवावें असें आहे। हिंदुराजे सवाई आदि करून स्वामी चे स्वारी ची मार्ग प्रतीक्षा करतात। स्वामी चें पुष्टिबल होताच जाट वगैरे फौज दिल्लीवरी पाठवून सवाई जी आपण दिल्लीस जाणार।"

(धोंडो गोविंद के बाजीराव को पत्र)

अर्थात् नादिरशाह ऐसा देव नहीं जो पृथ्वी को नष्ट कर सके। जबर्दस्त ताकत के आगे उसे भी झुकना पड़ेगा। इसलिये आप को (बाजीराव को) पूरी शक्ति के साथ आना चाहिये। युद्ध

के बाद ही अब शान्ति प्राप्त होगी। यदि अब मराठे और राजपूत वीर एक हो जायें तो विजय निश्चित है! हम सब हिन्दू शक्तियों को बुन्देलों समेत, एक हो जाना चाहिये। नादिरशाह वापिस लौटने के इरादे से नहीं आया है। वह हिन्दूराज्य पर अवश्य आक्रमण करेगा। सवाई जयसिंह की इच्छा है कि उदयपुर के राणा जी को दिल्ली का तख्त मिले। सवाई जी समेत सारे हिंदू राजे आपके पधारने की इन्तज़ार कर रहे हैं। आपके जाते ही सवाई जयसिंह अपनी फौज़ों को दिल्ली पर चढ़ाई करने के लिए भेज देंगे। सवाई खुद दिल्ली पर हमला करेंगे।

किन्तु बाजीराव समय पर नहीं पहुंच सका क्योंकि वसई की लड़ाई अभी खत्म नहीं हुई थी। वह अपनी विवशता पर लाल-पीला हो रहा था! उसने ब्रह्मेन्द्रस्वामी को लिखा:—

"हिन्दुलोकास संकट थोर प्राप्त झालें आहे। अद्याप वसई आली नाहीं...ऐशास तमाम मराठी फौजा एक होऊन चमेलीपार व्हावें। त्यास (नादिरास) अलीकडे देऊं येऊं नये असा विचार आहे। (बाजीराव का ब्रह्मेन्द्र स्वामी को पत्र।)

अर्थात्—'हिंदुओं का संकट चरम सीमा को पहुंच गया है। वसई पर अभी तक हमारा अधिकार नहीं हो सका...अब मराठा फौज को एक होकर चमेली नदी के पार जाना चाहिये, ताकि नादिरशाह को आगे बढ़ने का मौका न मिले।

परतु उसकी अदम्भ आत्मा सब बाधाओं पर विजयी हुई। इसके बाद वह लिखता है:—

"आपलीं घरगुती भाडणें (रघूजीचें पारिपत्य वगैरे) बाजूला ठेवलीं पाहिजेत आतां सर्व हिन्दूस्थानास एक शत्रु उत्पन्न जाला । आहे। मी तर नर्मदा उतरून सर्व मराठी सैन्य चम्बले पर्यन्त पसरून देणार। मग पाहूं या नादिरशहा कसा खालीं येता तो !"

(बाजीराव के पत्र)

(अर्थ) हमें 'राघोजी और दूसरों को दण्ड देने इत्यादि' आन्तरिक अपने झगड़ों को अलहदा रखना होगा । इस समय समस्त हिन्दुस्तान का एक शत्रु उत्पन्न हो गया है, जिसका हमने मुक़ाबला करना है । मैंने यह निश्चय कर लिया है कि मैं नर्मदा नदी पार कर के मराठा फौजों को चम्बल तक फैला दूँ। फिर देखूंगा कि नादिरशाह दक्षिण में कैसे आगे बढ़ता है ।

सवाई जयसिंह को भी अपने हिंदुत्व का अभिमान था। वह भी हिन्दू-पुनरुत्थान के आंदोलन के नेताओं में से प्रमुख था। उस ने मालवा के अत्याचार पीड़ित हिंदुओं को उकसाया था कि वे बाजीराव से प्रार्थना करें कि वह हिन्दू-स्वतन्त्रता के युद्ध को मालवा तक फैला दें और इस प्रकार शिवाजी के अनुयायियों के वंशजों के ध्येय को अर्थात् हिन्दू पद-पद-शाही को समस्त हिन्दुस्तान, में कायम करने के लिये महत्वपूर्ण क़दम उठायें। एक राजपूत राजा को पत्र लिखते हुए उसने लिखा—

"सिद्धश्री' '' नंदलाल जी प्रधान व भाइजी ठाकुर, संस्थान इन्दोर, अमरगढछ महाराजाधिराज श्री सवाई जयसिंहजी कृत प्रनाम वंचजो

.............सो आप को लिखते है कि बादशाह ने चढाई की है, तो कुछ चिंता नहीं। श्री परमात्मा पार लगावेगा। बाजीराव पेशवे से हमने आप के निसबत कौल वचन कर लिया है।"

फिर उसने लिखा

"हजार शाबास है आप सब मालवे सरदार एक रहके हिन्दूधर्म का कल्याण होना। और मालवे में हिंदूधर्म की वृद्धि होना इस बात का विचार कर मालवे में से मुसलमानों को नौमेद किये, और हिंदूधर्म कायम रखा (जयसिंह का पत्र २६-१०-१७२१ ई०)

बाजीराव का लड़का नाना साहब हिन्दू पद-पादशाही का सबसे महान् नेता था। उस के पत्रों में उस की हिन्दुत्व-भक्ति का जीवित प्रमाण मिलता है। जहां भी हम उसे देखते हैं उसे हिंदुत्व का नायक पाते हैं। ताराबाई को वह लिखता है--

"मोगल केवल हिंदु राज्याचे शत्रु। त्यांन देखील अनुसंधानें होत असतां सेवकांच वाकडे वर्तताात हा दोष।"

(नाना साहब के पत्र)

अर्थात्—मुगल हिन्दू शक्ति के बड़े शक्तिशाली शत्रु हैं। आप स्वयं उन से संधि वार्ता चला रही हैं। फिर सेवक को क्यों दोष देते हैं?

पानीपत के युद्ध में हम ने बहुत हानि उठाई, फिर भी हम ने सब कुछ नहीं खोया। उस के बाद भी नाना फड़नवीस और महाद जी शिंदे जो हिंदुओं की ढाल—दिमाग और तलवार—थे, हिंदुत्व की रक्षा के लिये ४० साल तक लड़ते रहते। पानीपत का युद्ध हिंदुओं के लिये प्राणघातक था। तथापि इन दो राज-

नीति-विशारदों के कुशल प्रयत्न ने फिर से हिंदुओं को हिंदुस्तान का असली राजा बना दिया। उस समय हिंदुत्व की भावना कितनी तीव्र थी और मुगल साम्राज्य के अधीन काम करने वाले हिन्दू भी राष्ट्रीय भावना से किस कदर भरे हुए थे, इस का एक प्रमाण निजाम के गोबिंदराव काले के उस पत्र से मिलता है जो उन्होंने नानाफड़नवीस और महादजी शिंदे की सुलह पर नानाफड़नवीस को लिखा था। पत्र इस प्रकार है—

'पत्र पाहताच रोमांच उभे राहिले। अति संतोष झाला। विस्तार पत्रीं किती लहूं ? ग्रंथचे ग्रंथ मनात आले। अटक नदीचे अलिकडे दक्षिण समुद्रापावेतों हिंदुंचें स्थान—तुरक-स्थान नव्हे। हे आपली सिमा पाण्डवापासून विक्रमाजित पावेतो। त्यानीं राखून उपभोग घेतला। त्यां मागें राज्यकर्ते नादान निघाले। यवनाचें प्राबल्य झालें। दस्त्यानीं (बाबरच्या वंशजानीं) हस्तनापुरचें राज्य घेतलें। शेवटीं आलमगिराचे कारकीर्दीत यज्ञोपवीतास साढ़े तीन रुपये जेजया बसून ओलें अन्न विकत घ्यावें अशी नौबत गुजरली।

त्या दिवसात कैलासवासी शिवा जी महाराज शककर्ते व धर्मराखते निघाले। त्यानीं किंचित कोन्यांत धर्म रक्षण केलें। पुढें कैलासवासी नाना साहेब व भाऊसाहेब प्रचंड प्रतापसूर्य असे झाले कीं, असे कधीं झाले नाहीं। हल्लीं श्रीमंताचे पुण्य प्रतापें करून व राजेश्री पाटील बुवांच्या बुद्धि व तरवारीच्या पराक्रमें करून सर्व घरास आले। परन्तु झालें कसें ? प्राप्त झालें तेणेंकरून बुजमता वाटली। अगर मुसलमान कोणी असते तरी मोठे मोठे तवारिखनामे झाले

असते। यवनांच्या जातींत इतकी गोष्ट चागली झाल्यास गगनावरोवर करून शोभावावी। आमचे हिंदूंत गगनाइतकी झाली असतां उच्चार न करावा हे चाल आहे। अलभ्य गोष्टी घडल्या। यवनांच्या मनांत की वा दरशाही झाली असें वोलतात।

लेकिन ज्यांनीं ज्यांनीं हिन्दुस्थानांत शिरें उचलली त्यांचीं पाटील वावांनी फोडलीं। न लाभल्या त्या गोष्टी लाभल्या। त्यांचा वंदोवस्त शककर्त्याप्रमाणें होऊन उपभोग घ्यावें पुढेंच आहे। कोठें पुण्याईत उणें पडेल आणि काय दृष्ट लागेल नकले। झालेशा गोष्टी यात केवल मुलुख, राज्य प्राप्त इतकेंच नाहीं तरी वेदशास्त्र-रक्षण, गोब्राह्मण-प्रतिपालन, सार्वभौमत्व हातीं लागणें, कीर्तियश याचे नगारे वाजणें इतक्या गोष्टी आहेत। हे किमया सम्भालणें हक्क आपला व पाटील वावांचा। त्यात वेत्यास पड़ला की दोस्त दुष्मन मजवूत। संशय दूर झाला। अति चांगलें। अति चांगलें। दुष्मन् उशापायथ्याशीं लागून आहेत। चैन नव्हतें। आपण लिहिल्यावरून मन स्वस्थ झालें।

(१७६३ ईसवी)

अर्थात् पत्र पढ़ कर रोमांच हो आया। वहुत संतोष हुआ। विस्तार से क्या लिखूं? अटक नदी से हिंद-महासागर तक हिंदुओं की भूमि है, तुर्कों की नहीं। पांडवों के ज़माने से विक्रमादित्य तक सभी हिंदू सम्राट इस भूमि पर राज्य करते रहे हैं। यही हमारी सीमा रही है। उस के वाद हिन्दू राजे अयोग्य वन गए और यवनों की शक्ति वढ़ गयी। वावर के वंशजों ने हस्तिनापुर पर कब्ज़ा कर लिया। आलमगीर के समय हमारा पतन इस सीमा

पर पहुँच गया कि हर यज्ञोपवीतधारी को ३॥ रुपया जज़िया-कर देना पड़ता था। और पका हुआ अन्न खरीदना पड़ता था।

ऐसे संकटमय समय में नवयुग प्रवर्तक और धर्म रक्षक शिवा जी का जन्म हुआ। उन्हों ने कुछ धर्म की रक्षा की। तदनन्तर नाना साहब और भाऊ साहब के प्रताप का सूर्य चमका और ऐसा चमका कि जैसा कभी नहीं चमका था। और सब उन्हीं के प्रताप से व राजश्री 'पाटीलबुवा' की बुद्धि से हिंदूधर्म की पूर्ण रक्षा हो गयी। परन्तु यह सब कैसे हुआ ? क्यों कि हम विजयी हुए इस लिए हमारे लिए यह साधारण बात हो गई, यदि मुसलमानों को यह विजय मिलती तो वे ज़मीन-आसमान एक कर देते। हम हिंदुओं की यह रीति है कि हम अपनी महान् से महान् विजय पर भी चुप रहते हैं, चर्चा तक नहीं करते। मुसलमान कहते हैं कि 'काफिरशाही' फिर आ गयी है।

निःसन्देह 'पाटीलबुवा' ने उन लोगों के सिरों को कुचल कर रख दिया जिन्होंने सिर ऊंचा उठाने की कोशिश की। वस्तुतः उन्होंने असम्भव को सम्भव कर दिखाया है। अब इस साम्राज्य का प्रबन्ध और उस का उपयोग करना भी एक कला है। मुझे भय है कहीं हम उस कला में न्यून न रहें। हमारी विजय का सार खोयी हुई भूमि और छिने हुए साम्राज्य की प्राप्ति में ही नहीं है। बल्कि वेदशास्त्र रक्षण, गोब्राह्मण प्रतिपालन और सार्वभौम कीर्त्ति पाने ही में विजय का फल है। इसकी रक्षा अब आपके हाथों में है। अगर आपस की फूट होगी तो शत्रु फिर बल पकड़ लेगा।

मेरे सब संशय दूर हो गये। यह बहुत सराहनीय घटना है। शत्रु चारों ओर हैं, मैं बहुत बेचैन था। आप का पत्र पा कर मुझे बहुत सन्तोष हुआ। (सन् १७६३ ई०)

बड़े २ सारहीन ग्रन्थों की अपेक्षा इस एक ही पत्र से, जो कि इतनी स्वाभाविकता और शान से लिखा गया है, हमारे इतिहास की सच्ची भावना का परिचय मिल जाता है। इस पत्र से हमे 'हिन्दू' और 'हिन्दुत्व' के व्युत्पत्ति का भी पता चल जाता जाता है। हमें यह भी ज्ञात हो जाता है कि हमारे पुरखाओं से लेकर उस युग तक के लोगों के हृदय में 'हिन्दू' और 'हिन्दूत्व' के लिए कितना प्यार और कितनी श्रद्धा थी। अत- और अधिक पत्रों का हवाला देना व्यर्थ प्रतीत होता है।

———

५

अभी तक हमने प्राचीनतम वैदिक काल से लेकर 'अंतिम' हिन्दू-साम्राज्य के पतन काल, (सन् १८१८ ई०) तक 'हिंदू व हिंदुस्थान' शब्द के ऐतिहासिक विकास का अध्ययन किया है। अब हम अपने असली विषय 'हिंदुत्व' की अनिवार्य विशेषताओं पर प्रकाश डालेंगे। हमारे अध्ययन का मुख्य परिणाम उस निराधार भ्रम को दूर करता है जो हमारे ही देशवासियों मे से कुछ लोगों के दिलों में घुस गया है कि 'हिन्दू' और 'हिन्दुस्थान' नाम मुसलमानों ने हमें हिकारत की नज़र से दिये थे। ये नाम हमारे ही हैं और बहुत प्राचीन हैं।। मुहम्मद के जन्म से भी पूर्व और अरब निवासियों के इतिहास से भी पहले हमारे राष्ट्र का नाम 'हिंदुस्थान' और हिंदुस्थान के वासियों का नाम 'हिन्दू' पड़ चुका था। हम इस नाम को अभिमान से लेते थे। हम ही नहीं, हमारे पड़ोसी राष्ट्र भी हमे इसी नाम से जानते थे। अगर अरब निवासियों ने ही इस नाम की सृष्टि की है तो क्या 'सिंधु' नदी का भी इन्हों ने ही निर्माण किया है। दोनों ही बातें निर्मूल हैं। उन्होंने

केवल ईरानियों, यहूदियों और अन्य विदेशी जातियों की मार्फ़त हमारे इस नाम का परिचय पाया था। यदि इस नाम के साथ ऐसी ही हिकारत मिली होती तो क्या कभी यह सम्भव था कि हमारे अभिमानी वीर इस नाम को गौरव के साथ लेते। हमारे देशवासी भी पर्शियन और अरबी भाषा से इतने अनभिज्ञ नहीं थे कि इस नाम के यौगिक अर्थ को न जान पाते। मुसलमान हमें 'हिंदू' के इलावा काफ़िर भी कहते थे। किंतु हमने 'काफ़िर' नाम को नहीं अपनाया और न कभी इस नाम पर अभिमान किया। 'हिंदू' नाम को शायद मुसलमान नफ़रत से भी लेते हों किंतु हमें इसका राष्ट्रीय महत्व मालूम था। कुछ लोग यह युक्ति देते हैं कि संस्कृत साहित्य में 'हिन्दू' नाम नहीं आया है। संस्कृत में तो और भी बहुत से नाम नहीं आये, जैसे किशन—बनारस—मराठा—सिख—गुजरात—पटना—सिया—जमना। इसी तरह हज़ारों ऐसे शब्द नहीं आये जिनका हम रोज़ाना इस्तेमाल करते हैं। सका यह अभिप्राय तो नहीं कि उसका विकास विदेशी भाषा से हुआ है। संस्कृत मे इन नामों से मिलते जुलते शब्द मिल जाते हैं। ये नाम प्रायः सस्कृत नाम के विकार ही है। जैसे संस्कृत के वाराणसी शब्द का ही प्राकृत, जो बोलचाल की भाषा थी, बनारस बन गया। 'प्राकृत' भाषा के शब्द की 'संस्कृत' में खोज करना बिल्कुल मूर्खता है। 'हिंदू' शब्द भी प्राकृत है। संस्कृत में उसका प्रयोग कैसे होता ? फिर भी कई स्थानों में इसका प्रयोग मिलता है। भेरुतन्त्र मे 'हिंदू' शब्द का प्रयोग है। महाराष्ट्र के आप्टे और

बङ्गाल के तारानाथ तर्कवाचस्पति ने भी 'हिंदू' शब्द का संस्कृत में प्रयोग किया है। ' शिव शिव न हिन्दुर्नयवन." संस्कृत वाक्य में हिंदू शब्द का प्रयोग स्पष्ट ही है।

बहुत सम्भव है कि आधुनिक ढङ्ग की मुसलमानी पर्शियन में हिंदू शब्द के साथ कुछ घृणासूचक अर्थ जोड़ दिए गए हों। लेकिन इसका यह आशय नहीं कि इस शब्द की उत्पत्ति ही घृणासूचक भाव प्रगट करने को हुई थी और इस का अर्थ काला था। पर्शिया मे हिंदु शब्द का प्रयोग 'काला' के अर्थ मे कहीं नहीं हुआ है हिंदू का अर्थ काला हो तो हिंदी का अर्थ 'काला आदमी' होना चाहिये। लेकिन इसका यह अर्थ नही। सच तो यह है कि 'हिंदू' शब्द मुसलमानी पर्शियन का नहीं अपितु 'ईरानी' व 'जिंद' भाषा का है। इसका प्रयोग 'काला आदमी' के अर्थों मे इस लिये भी नहीं हो सकता क्योंकि हमारे पूर्वज जो वैदिक व अवस्तिक काल मे यहां आये थे, काले नहीं थे। वे ईरानियों के समान ही थे और कुछ काल पूर्व ही उनके साथ रहे थे। उनका रंग श्वेत था, यह बात इस से भी मालूम होती है कि हमारे पड़ोसी देश अफ़गानिस्तान को पर्शियन में 'श्वेत भारत' कहा गया है।

'वस्तुतः एक बार यह प्रमाणित होने के बाद कि 'हिंदू' और 'हिंदुस्थान' नाम हमारे राष्ट्र के थे और मुसलमानों व मुसलमानी ढंग की पर्शियन के आने से पहिले ही हम इन नामों को राष्ट्रीय नाम मान चुके थे, हमें यह चिन्ता छोड़ देनी चाहिये कि इन नामों का कोई बिगड़े दिमाग वाले व्यक्ति घृणित व अपमानसूचक

अर्थों में प्रयोग करने लगे थे। इंग्लैंड में ही एक समय था जब 'इंग्लिशमैन' शब्द का प्रयोग केवल अपमानित अर्थों में होता था। इंग्लैण्ड पर नार्मन जाति का अधिकार होगया था। वे लोग केवल शपथ लेते समय कहा करते थे "मैं इंग्लिशमैन कहलाऊँ अगर......।" अर्थात् इंग्लिशमैन कहलाना भयंकर गिरावट थी। एक 'नार्मन' को 'इंग्लिशमैन' तभी कहते थे जब उसका अपमान करना होता था या वह कोई अक्षम्य अपराध कर देता था। इंग्लिशमैन शब्द के इतने अपमानसूचक अर्थ रहने के बावजूद भी क्या इंग्लैण्ड निवासियों ने अपने देश और जाति के नाम को बदलने की चिन्ता की, इंग्लैण्ड का नाम नॉर्मण्डी रखा? नाम परिवर्त्तन से ही क्या इंग्लैण्ड का अपमान धुल जाता? क्या उसकी पराजय विजय मे तब्दील हो जाती? कभी नहीं। इस के विपरीत, क्योंकि उन्होंने अपने प्राचीन रुधिर और नाम का परित्याग नहीं किया, आज वही अपमानित शब्द 'इंग्लैंड' कीर्त्ति का सूचक माना जाता है और 'नार्मन' नाम का अस्तित्व भी नहीं है। 'इंग्लिशमैन' नामधारी आज संसार के साम्राज्य का प्रभुत्व पाये हुए हैं।

लड़ाई की कशमकश में राष्ट्रों की बुद्धि भी व्यवस्थित नहीं रहती। शत्रु को बदनाम करने के लिये वे सब भले बुरे उपायों का आश्रय लेते हैं। पर्शियन के लिये यह बहुत ही स्वाभाविक था कि वे 'हिंदू' नाम को 'काला', 'चोर', 'बदमाश' अर्थों का पर्यायवाची बना लेते। किंतु उन्हें याद रखना चाहिये कि हिंदू भी 'मुसलमान'

शब्द का इस्तेमाल किसी यथार्थ मनुष्य के लिये नहीं करते थे। 'मुसलमान' या 'मुसण्डा' शब्द हिंदुओं की डिक्शनरी में जानवर से भी गये बीते इन्सान के लिये आता था। ऐसे शब्दों की याद लड़ाई के तुरन्त बाद भुला देनी चाहिये। लड़ाई के समय इन की सृष्टि बहुत स्वाभाविक है। किन्तु होश में आते ही इनके भूल जाने में देर नहीं करनी चाहिये। हमें यह भी स्मरण रखना चाहिये कि 'हिंदु' शब्द का प्रयोग यहूदी लोग 'शक्तिशाली और शूरवीर मनुष्य' के लिये करते थे। हमारा राष्ट्र इन्हीं गुणों में प्रख्यात था। अरब साहित्य में भी हिंदू शौर्य का प्रमाण मिलता है। अरबी ग्रन्थ 'सोइब मो अलक्क' में एक वाक्य यह है कि 'भाई बंधुओं का अत्याचार हिंदू तलवार से भी अधिक घातक होता है।' पर्शियन साहित्य में 'हिंदू जवाब देना' कहावत का अर्थ 'शत्रु पर कड़ी चोट करना' है। हिंदुओं की तलवार का हमला उस समय बहुत जबर्दस्त माना जाता था। प्रचीन बेबिलोनिया निवासी अपने श्रेष्ठतम वस्त्र को 'सिंधु' कहते थे। कारण, यह हिंदुस्थान से ही निर्यात् होता था। बेबिलोनिया के साहित्य में हिंदू शब्द का अर्थ केवल हिंदू राष्ट्रवासियों से है, किसी और अपमानसूचक अर्थ मे हिंदू शब्द का प्रयोग नहीं है।

अन्य राष्ट्र भी 'हिंदु' शब्द को श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। चीनी यात्री युआनच्वांग ने हिंदू शब्द को 'इन्दू' मान कर लिखा है कि इस देश का नाम 'इंदू' यथार्थ ही है क्योंकि इस देश की सम्पत्ति इंदु (चाँद) के समान ही मनुष्य की भ्रान्त आत्मा के

लिये शांति और आनंद देने वाली रही है। विदेशी जातियों का इस नाम के लिये इतना सन्मान प्रदर्शन हम हिंदुओं के लिये अभिमान का विषय है। वे इसी नाम से हमारी शूरवीरता और आत्मिक महानता का स्मरण करते थे। कुछ लोग अपने को 'आर्य' कहने में और जन-संख्या की गणना में भी 'आर्य' लिखवाने में बहुत गौरव मानते हैं। वे वस्तुतः 'आर्य' शब्द का तिरस्कार करते हैं। वे उस शब्द को अपनी सतह पर लाकर उसे अपमानित करते हैं। इस के अतिरिक्त गुलाम जाति के जु.ा.र तबकों के लिये प्रचलित नामावली में—जिस में कुली नाम भी है—एक और नाम की वृद्धि करते हैं।

'हिंदू' नाम के परित्याग के लिये जो युक्तियां दी जाती हैं, उनमें यही प्रमुख है कि इस नाम का प्रारम्भ विदेशियों की दुर्भावना है। यदि उनकी प्रमुख युक्ति को सत्य भी मान लें तो भी प्रश्न यह है कि क्या हम अब अपने नाम को बदल सकते हैं? 'हिंदू' नाम अब हमारी जाति का राष्ट्रीय नाम हो चुका है। काश्मीर से कन्या-कुमारी तक और अटक से कटक तक हमारे पूर्वजों की सन्तान और उनकी संस्कृति को यही नाम एक सूत्र में पिरोये हुये है। क्या उसे हम एक पुरानी टोपी की तरह बदल सकते हैं?

एक बार मेरी भेंट एक ऐसे ही व्यक्ति से हो गयी जो जन गणना में अपने को 'हिंदू' न लिखकर 'आर्य' लिखवाने पर तुला हुआ था। वह भी यही समझता था कि 'हिंदू' शब्द पर्शियन है और इसका अर्थ 'काला या चोर' है। मैने उससे पूछा, तुम्हारा नाम

क्या है वह बोला 'तख्तसिंह' । मैं ने कहा, अपनी कौम बदलने से पहले तुम अपना नाम तो बदलो । तुम्हारा नाम आर्यपद्धति के अनुसार 'मौद्गलायन या 'सिंहासनसिंह' होना चाहिये । तख्तसिंह तो मुसलमानी और हिंदू नामों का मिश्रित नाम है । तुम्हारा नाम विशुद्ध आर्य नाम होना चाहिये । ज़रा झेंप कर वह बोला "यह बहुत कठिन है । इससे मेरा रोजगार बंद हो जायगा । मुझे दुनियां तख्तसिंह नाम से ही जानती है । नये नाम से मुझे नये सिरे से संसार मे परिचय पाना होगा । खुद मैं अपना नाम भले ही बदल लूं मगर दुनिया भर को मैं कैसे मज़बूर कर सकता हूँ । यह परीक्षा बड़ा मंहगा पड़ेगा कि सब मुझे 'तख्तसिंह' पुकारें और मैं अपने को सिंहासनसिंह कहूँ" । उसकी युक्ति मे बहुत सार था । मैंने उसी की युक्ति से उसको समझाया कि अगर तुम्हारे एक इंसान के नाम में—जो निर्विवाद अनार्य नाम है—परिवर्त्तन करना इतना कठिन और खतरनाक है तो सम्पूर्ण जाति का नाम बदलने के लिये तुम इतने उतावले क्यों हो ? खासकर जबकि वह नाम भी विदेशी नहीं—बल्कि अपना ही है—ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार वेद हमारे हैं । उस एक व्यक्ति की तरह पंजाब के सिख भाई भी अपना नाम बदलने की कोशश कर रहे हैं । वह हिन्दू जाति का सब से शूरवीर दल है । हमारे गुरु ने उनके सम्बन्ध में कहा था—

'नीलवस्त्र के कपड़े फाडे तुरक पाणी अमल गया ।—

उनका जन्म—

'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे'। (गीता)

अथवा—

धर्म चलावन संत उबारण, दुष्ट दैत्य के मूल उपाटण,
यहि काज धरा मैं जनमू । समझ लेहु साधुसम मननम् ।

इन योद्धाओं के दल का नाम 'खालसा' रखा गया था ।

क्षत्रियाहि धर्म छोड़िया म्लेच्छ भाषा गहि ।
सृष्टि सब इक वर्ण हुई धर्म को गति रहि ।

इस श्लोक का स्वागत अब भी रोज़ाना 'वाह गुरु जी की फते, वाह गुरु जी का खालसा' इन जयकारों से किया जाता है। 'दरबार', 'दीवानबहादुर' शब्द हमारे हरिमन्दिरों के हृदय में घुस गये हैं। वे हमारे पुराने घावों के निशान हैं। घाव भर गये हैं। मगर उनके निशान बने हुए हैं। वही निशान अब हमारे शरीर का अंग बन चुके हैं। जब तक उन निशानों को खुरच कर उतारने की कोशिशें हमें लाभ पहुंचाने की जगह नुकसान ही पहुंचायेंगी तब तक हमें उन निशानों को बर्दाशत करना ही होगा। आखिर वे निशान हमारे उन युद्धों के हैं जिनमें हमने विजय हासिल की थी।

नाम-परिवर्त्तन की आवश्यकता है, तो उन नामों की है जो विदेशी हैं या विदेशी राज्यों की सामयिक उपज होने के कारण उनकी याद दिलाने वाले हैं। क्या यह असत्य-प्रायणता नहीं कि हम ऐसे नामो से तो द्वेष नहीं करते बल्कि प्रेम करते हैं; और 'हिन्दू'

या 'हिन्दुस्थान' नामों को बदलने या मिटाने का आग्रह करते हैं—जो नाम हमारे हैं—जो हमारे जन्म के साथ हमें मिले हैं और जिन्हें पिछली ४० सदियों से हमारे लाखों पूर्वज गौरवान्वित करते आये हैं—हिंदू और हिन्दुस्थान यही नाम हैं जो सैंकड़ों वर्षों तक हमारे काश्मीर से कन्या कुमारी तक और अटक से कटक तक फैले हुए साम्राज्य के स्मृति चिन्ह हैं। सिंधु या हिन्दू एक ही शब्द से हमारी जाति तथा देश की सम्पूर्ण भौगोलिक स्थिति का चित्र हमारी आँखों के सामने खिच जाता है। हमारे राष्ट्र की सीमाएँ निर्धारित करने के लिए इस शब्द को ही श्रेष्ठता का चिन्ह स्वीकृत किया गया था; यही एक ऐसा नाम है जिसे हमारे शत्रु घृणा की दृष्टि से देखते थे, और इसी की मानरक्षा के लिए शालिवाहन से लेकर शिवाजी तक सहस्रों योद्धा शताब्दियों तक लड़ते रहे। चितौड़ और पद्मनि की समाधि पर यही 'हिंदू' शब्द अंकित पाया गया था। यह 'हिन्दू' शब्द ही था जिसे तुलसीदास, तुकाराम, रामकृष्ण और रामदास ने अपनाया था। हिन्दूपद-पादशाही की स्थापना रामदास की महान अभिलाषा, शिवाजी का लक्ष्य, बाजीराव और बन्दाबहादुर, छत्रसाल और नाना साहब तथा प्रताप और प्रतापदित्य के जीवन की चरम अभिलाषा थी। हिन्दू-पद-पादशाही के शब्द ही उस पताका पर लिखे हुए थे जिस की रक्षा करते हुए पानीपत की रण-भूमि में, भाऊ के नेतृत्व में, केवल एक ही दिन मे एक लाख वीर शत्रुओं को

धराशायी करते हुए वीर गति प्राप्त कर गए थे। इतने बलिदान के होते हुए भी, और इस के प्रभाव से हिन्दूपद-पादशाही की स्थापना के लिए ही, नाना और महादजी ने जाति की नौका को चट्टानों और बलुआ किनारों से सुरक्षित रख कर तट पर ला खड़ा किया। यह हिन्दू या हिन्दुस्थान नाम ही है जिस के प्रति अब भी नीपाल के स्वतंत्र महाराजा से लेकर गली में मांगने वाले भिखारी की एक समान श्रद्धा है। इन शब्दों को त्यागना मानो अपनी जाति के हृदय को काट कर परे फैंक देना है। ऐसा करने से पहले ही हमारी मृत्यु हो जायगी। ऐसा करना घातक ही सिद्ध नहीं होगा अपितु निरर्थक भी प्रमाणित होगा। हिन्दू और हिन्दुस्थान नामों को उन की वर्तमान स्थिति से परे हटाना मानो हिमालय पर्वत को उस की वर्तमान स्थिति से परे धकेलने का प्रयास है। प्रलयङ्कारी भूकम्प के अतिरिक्त ऐसा होना असंभव है।

जिन 'हिन्दू' व 'हिंदुस्थान' नामों के विरुद्ध सब से बड़ा आक्षेप इनके विदेशियों द्वारा आविष्कृत होने का है, उसके खण्डन के लिये कुछ और ऐतिहासिक प्रमाण दिये जा सकते हैं, किंतु ऐसा करना हमें अभीष्ट नहीं है। बहुत लोग इन नामों को अपनाने में या इन्हे सम्मान देने में इस लिये भी संकोच अनुभव करते हैं कि कहीं ऐसा करने पर उन्हें 'हिंदुवाद' से संलग्न, संकीर्ण मन्तव्यों का उपासक न मान लिया जाय। यह डर कि हिंदू होने से प्रत्येक हिंदु हिन्दूवाद का उपासक है, यद्यपि इसे

खुले आम स्वीकार नहीं किया जाता है; तथापि यह डर कई लोगों को हिंदु शब्द के इस कलंक को-कि वह विदेशीय है-स्वीकार कर लेने पर विवश कर लेता है। यह भय सवथा निष्कारण भी नहीं है, किंतु अच्छा हो अगर इसी भय से अपने को हिंदू न कहलाने वाले अपने भय को स्पष्ट शब्दों में प्रगट करें। हिंदू और 'हिंदूवाद' शब्दों की बाहरी समानता ही इस भय का मुख्य कारण है, जो हमारे बहुत से सदाशयी और हिंदुत्व प्रमी सज्जनों को भी हिंदू बिरादरी से अलहदा रखने का कारण बन जाती है। हम इन दोनों शब्दों के भेद की अभी खोलकर रखेंगे। यहां हम इतना कहना ही उचित समझते हैं कि 'हिंदूवाद' शब्द ही विदेशी उपज है न कि 'हिन्दुत्व'। तिलाञ्जलि देनो हो तो 'हिंदुवाद' शब्द को देनी चाहिए; 'हिन्दुत्व' को नहीं। 'हिंदूवाद' पर विश्वास न रख कर भी हिंदुस्तान-निवासी कोई भी ऐसा व्यक्ति, जो हिंदू संस्कृति पर आस्था रखता है, हिन्दुस्तान को अपनी मातृ-भूमि मान सकता है, हिंदू हो सकता है। हिन्दुओं के आप्तग्रन्थ वेदों को ईश्वरीय ज्ञान न मानने वाले जन भाई भी हिंदू ही कहलाते हैं। अहिन्दू कहलाने मे वे दुःख अनुभव करते हैं। एक यही उदाहरण हिन्दुवाद से मतभेद रखने वाले हिन्दुओं को हिंदू कहलाने मे निर्भय होने को प्रेरित कर सकता है। हमने यहां एक नाम वास्तविक तथ्य के स्वरूप में पाठकों के सन्मुख रख दिया है। उसके औचित्य व कारणों पर प्रकाश अभी डाला जायेगा। जब तक हम इसकी व्याख्या नहीं करते तब तक पाठकों को यह स्मरण रखना चाहिये कि हम अभी तक 'हिंदुवाद' के

नहीं बल्कि 'हिंदुत्व' के राष्ट्रीय व सांस्कृतिक पहलुओं का विचार कर रहे थे।

अब हम 'हिन्दुत्व' शब्द के अंतर्गत भावों का विश्लेषण करेंगे। हिंदुत्व 'हिंदु' शब्द से निकला है। हम यह लिख चुके हैं कि हमारे सब प्राचीन ग्रन्थ यह सिद्ध करते हैं कि 'सप्तसिन्धु' या 'हप्तहिंदु' उस भूमिभाग का नाम था जहां वैदिक राष्ट्र का अभ्युदय हुआ था। इस नाम का आधार भौगोलिक ही था। भौगोलिक सीमा का धीरे २ विस्तार हो गया और लगभग ५००० साल बाद इतना विस्तार होगया कि सिन्धु नदी से समुद्र पर्यन्त सम्पूर्ण भूमि का नाम हिन्दू व हिन्दुस्थान हो गया। किसी भी जाति मे एकता और संघभावना का उदय तभी हो सकता है जब उसका विभिन्न जनसमुदायों को मिलाने वाला एक ऐसा नाम हो और उसकी एक ऐसी भौगोलिक सीमा हो जिसके स्मरण मात्र से उस जाति के सम्पूर्ण व्यक्तियों में एक ही मातृभूमि की भावना भर जाय; और पुरानी मधुर स्मृतियों का विकास हो। हम एक शक्तिशाली और सम्मिलित राष्ट्र की इन दोनों कसौटियों पर पूरे उतरते हैं। हमारी भूमि इतनी विशाल, किन्तु इतनी मज़बूती से शृङ्खलावद्ध है, उसकी सीमायें इतनी परस्पर संयुक्त हैं कि दुनियाँ के तख्ते पर और कोई भी राष्ट्र इतना स्वाभाविक राष्ट्र नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है मानो कुदरत ने सम्पूर्ण भारतवर्ष का एक आदर्श राष्ट्र रूप में निर्माण किया है। उस राष्ट्र का नाम हिन्दुस्थान भी आदर्श रूप से उपयुक्त है। इस नाम के उच्चारण करते ही मन

मे मातृ-भूमि की मूर्त्ति खिंच आती है और साथ ही उसके भौगोलिक देह की रूपरेखा भी सामने आजाती है मानो वह मूर्त्ति सजीव मूर्ति है। हिन्दुस्थान का अर्थ है हिन्दुओं की भूमि। अतः हिन्दुत्व का सब से मुख्य लक्षण भौगोलिक होना चाहिये। हिन्दू हिन्दुस्थान के निवासी को कहेंगे। वह स्वतन्त्ररूप से निवासी भी हो सकता है और पूर्वजों के वंशागत निवास से भी उसे हिंदु नागरिकता मिल सकती है। हिन्दुस्थान से बाहिर फ्रांस व अमेरिका देशों में 'हिंदू' का भाव केवल भारतीय से लिया जाता है। इस नाम के धार्मिक व सांस्कृतिक अर्थों की कोई परवाह नहीं करता। यदि हिंदू शब्द का अर्थ वही लिया जाय जो उसके शब्द से प्रगट होता है, उसके साथ धर्म व संस्कृति का स्मरण न किया जाए, तो हिंदू शब्द का अर्थ हिंदुस्थान में रहने वाले व्यक्ति के अतिरिक्त और हो भी क्या सकता है? क्यूँ न हिंदी शब्द की तरह ही हिंदू को भी व्याख्या की जाये।

हम अपने अनुशीलन मे वस्तुस्थिति की अपेक्षा औचित्य (क्या होना चाहिए) का विचार ही अधिक करते रहे हैं। वस्तुतः क्या है? इसका नहीं। इस पहलू को भी हम नजरों से ओझल नहीं कर सकते। अतः हिंदुत्व का लक्षण करते हुए इस शब्द से जो कुछ वर्तमान में ग्रहण होता है, उस पर भी निगाह डाल लेनी चाहिये। यद्यपि हिन्दू शब्द से प्रत्येक भारतीय का निर्देष होना चाहिये किंतु हिंदू शब्द मे यदि मुसलमान को भी अंतर्गत करने का हम प्रयत्न करेंगे तो बहुत खींचतानी करनी पड़ेगी।

सम्भव हैं, कभी दूर भविष्य में हिंदू शब्द हिंदुस्तान के प्रत्येक निवासी के लिये प्रयुक्त हो सके, किंतु वह दिन तभी आएगा जब स्वर्थांध धार्मिक कट्टरता का लोप हो जायगा और धर्म का अर्थ 'वाद' न रहकर उन त्रिकाल सत्य नियमों से रह जायगा जो सम्पूर्ण मानव समुदाय के आधार हैं। वह धर्म विश्वधर्म होग। अभी तक उस महान् लक्ष्य की एक किरण भी विश्व के क्षितिज पर नजर नहीं आती। अतः वास्तविकता को छोड़ स्वप्न जगत् में विचरना मूर्खता है। जब तक प्रत्येक 'वाद' अपनी विषैली 'कट्टरता' से मुक्त नहीं होता तब तक राष्ट्रीय व सांस्कृतिक एकता पर आश्रित राष्ट्र भी अपने उस संगठन को कंसे शिथिल कर सकते हैं जो सम्मिलित नाम तथा सम्मिलित राष्ट्रीय चिह्न रखते हैं। एक अमरीकन भी भारत का नागरिक बन सकता है, उसे 'भारती' व 'हिंदी' कहलाने का अधिकार प्राप्त हो सकता है। किंतु जब तक वह हमारी संस्कृति को न अपना ले, तथा हमारे देश को अपने ही देश की तरह प्रेम व पूजा की दृष्टि से न देखे, तब तक वह हिंदू बिरादरी मे कैसे मिल सकता है ? यह ठीक है कि 'हिन्दुत्व' पाने की प्रधान शर्त हिन्दुस्थान निवासी होना है तथापि उसकी केवल यही शर्त तो नहीं है । हिन्दुत्व का अर्थ केवल भौगोलिक नहीं, उसके अतिरिक्त भी है।

हिन्दू शब्द केवल भारतीय व हिंदी शब्दों का पर्यायवाची नहीं है; और उसका अर्थ केवल हिन्दुस्थान निवासी नहीं हैं। हिन्दू हिन्दुस्थान के निवासी होने या हिन्दुस्थान उनकी मातृ

भूमि होने के कारण ही एक नहीं हैं अपितु वंशागत एकता व खून का रिश्ता होने के कारण भी वे एक हैं। वे केवल भौगोलिक सूत्र में ही बधे हुए नहीं है । वे केवल एक राष्ट्र के नहीं बल्कि एक जाति के भी हैं । जाति शब्द का मूल 'जन्' धातु है । उसका अर्थ है उत्पत्ति । जिनकी उत्पत्ति एक पिता से हो, जिनमे एक ही मां बाप का खून हो, वही एक जाति के हो सकते हैं । सभी हिन्दुओं मे वैदिक माता-पिता का खून है, जो स्वयं एक जाति के थे । कुछ लोग जो हमें एक जाति के रूप मे नहीं देखना चाहते, पूछते हैं—क्या तुम एक जाति के हो ? क्या तुम एक खून के होने का दावा कर सकते हो ? हम भी उनके प्रश्न का उत्तर प्रश्न से ही देते हैं-क्या इंग्लिश कोई एक जाति है ? क्या इंग्लिश-रक्त, जर्मन-रक्त या फ्रेञ्च-रक्त का कुछ अर्थ हैं, जहां अन्तर्राष्ट्रीय विवाहों की रसम इतनी प्रचलित है वहां के निवासी विशुद्ध रक्त के होने का दावा कब कर सकते हैं ? अथवा वे एक जाति के कब हो सकते हैं ? यदि वे एक जाति के हो सकते हैं तो हिन्दू क्यूं नहीं हो सकते ? हमारी वर्णाश्रम व्यवस्था के बहुत संगठित होने के कारण, जिसे दुनिया संकीर्ण कहकर बदनाम करती है, और जिसके महत्व से संसार अपरिचित है, हमारा रक्त अन्य जातियों की अपेक्षा बहुत शुद्ध है । प्रचलित वर्णाश्रम-भेद स्वयं हमारी विशुद्धता का प्रमाण है । ब्राह्मण से चांडाल तक सभी श्रेणी के हिन्दुओं में एक ही रक्त चल रहा है। स्मृति ग्रन्थों के अध्ययन से इन विभिन्न वर्णों में एक ही रक्त के

प्रवाह की साक्षी मिल सकती है। स्मृतियों में अनुलोम विवाहों और प्रतिलोम विवाहों का वर्णन है। ये दोनों प्रकार के विवाह अन्तवर्णीय विवाहों के दो नाम हैं। इन्हीं विवाहों के परिणाम में नये वर्णों की उपज होती थी। क्षत्रिय पिता का सम्बन्ध शूद्र स्त्री के साथ होने से जो पुत्र होता था उसे 'उग्र' कहते थे। यदि फिर क्षत्रिय पिता का सम्बन्ध उग्र कन्या से होता था तो सन्तान का वर्ण 'श्वपच' होता था। ब्राह्मण कन्या का सम्बन्ध शूद्र वर से होने के परिणाम में 'चण्डाल' वर्ण की सन्तान पैदा होती थी। उपनिषद्-काल के सत्यकाम जाबाली से महादजी शिंदे के समय तक सम्पूर्ण इतिहास इस बात का साक्षी है कि हमारी नसों में वैदिक काल के आर्यों की रक्त-गंगा प्रवाहित हो रही है। वही गंगा हमारी जाति को विकसित और समृद्ध करती रही है। उसमें समय २ पर अनेक धारायें मिलती रही हैं। वही गंगा हमारे देश को उपजाऊ बनाती रही है। उसी पवित्र रक्त-गंगा ने सदियों तक हमारी आत्माओं को पवित्र किया है—हमें पुनर्जीवन दिया है—नई शक्ति दी है। वर्णाश्रम व्यवस्था का आविष्कार उसी प्रवाह को व्यवस्थित करने के निमित्त हमारे राष्ट्रभक्त महात्माओं ने और धर्मसंस्थापकों ने किया था। इसका उद्देश्य बहुत ही पवित्र था। जाति के विकास को अधिक नीरोग और निर्बाध बनाने के हेतु ही वर्णव्यवस्था के नियम बनाये गये थे।

इस व्यवस्था का कार्यक्षेत्र प्रधान चार वर्णों के अन्तर्जातीय विवाहों से उत्पन्न सन्तान में ही नहीं बल्कि उन वर्णों व जातियों

में भी था जो हमारे केन्द्रित प्रवाह से बहुत दूर अलहदा हस्ती बना रही थीं। मालाबार और नेपाल के सुदूर प्रदेशों में वर्णं व्यवस्था के नियम उस देश की परिस्थिति के अनुकूल बन गये थे। वहाँ उच्च-वर्णीय हिन्दुओं को भी निम्न-से-निम्न वर्णीय कन्या से विवाह करने की इजाज़त थी। नेपाल और मालाबार देश पहिले हमारे लिये विदेश ही थे। किन्तु बाद में इन्होंने न केवल हिन्दुत्व को अपनाया बल्कि अपनी बहादुरी से हिन्दू कौम की रक्षा भी की। वर्णाश्रम व्यवस्था एक समय देश की आवश्यकताओं के अनुसार बदलने वाली जीवित संस्था थी, इसके प्रमाण बहुत मिलते हैं। अग्निवंश के युवकों का नागवंश की (जो एक जाति थी) कन्याओं से विवाह होना तथा चन्द्रवंश और सूर्यवंश की लड़कियों का नागों मे विवाह होना वर्णव्यवस्था की उदार प्रणाली का द्योतक है। हर्ष के समय तक भी ऐसे अन्तर्वर्णीय विवाहों के बहुत उदाहरण मिलते हैं। पाण्डव स्वयं अन्तर्जातीय विवाह का परिणाम थे। पराशर ब्राह्मण थे। इनका प्रेम एक मछियारे की लडकी से हुआ और सन्तान हुई जो हिन्दुस्तान के इतिहास में 'व्यास' नाम से अमर है। उन्होंने क्षत्रिय कन्या अम्बा-अम्बालिक से जो सन्तान पैदा की उनमें से एक पांडु था। पाण्डु ने अपनी पत्नियों को नियोग द्वारा सन्तान उत्पन्न करने को इजाज़त दी जिसके परिणाम स्वरूप पञ्च पाण्डवों ने जन्म लिया, जिनका नाम हमारे राष्ट्रीय इतिहास में सदा अमर रहेगा। उसी काल के कर्ण, बभ्रुवाहन, घटोत्कच और महात्मा विदुर भी

अन्तर्वर्णीय विवाहों के ही परिणाम थे । अब ज़रा आधुनिक समय के भी उदाहरण लीजिये । चन्द्रगुप्त ने ब्राह्मण कन्या से विवाह किया जिस से अशोक के पिता का जन्म हुआ । अशोक ने भी अन्तर्वर्णीय विवाह किया । अशोक का विवाह एक वैश्य-कन्या से हुआ । हर्ष ब्राह्मण था मगर उसने अपनी लड़की का विवाह एक क्षत्रिय से किया । विक्रमादित्य का यज्ञाचार्य व्याध-कर्मा एक ऐसे 'व्याध' की सन्तान था जिसकी शादी एक ब्राह्मणी से हुई थी । कृष्णभट्ट ब्राह्मण था किन्तु उसका प्रेम एक चांडाल कन्या से हो गया । इसी ने 'मातगी पन्थ' चलाया । वर्णव्यवस्था पत्थर की तरह अपरिवर्तनशील जड़ संस्था नहीं थी । वर्णों में परिवर्तन हो सकता था । निम्न श्लोक इसके प्रमाण है ।

> "शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम् ।"
> "न कुलं कुलमित्याहुराचारं कुलमुच्यते ॥
> आचारकुशलो राजन् इह चामुत्र नंदते ॥
> उपासते येन पूर्वां द्विजा संध्यां न पश्चिमाम् ।
> सर्वांस्तान् धार्मिको राजा शूद्रकर्मणि योजयेत् ॥"

अर्थात शूद्र ब्राह्मण बन सकता है, इसी प्रकार ब्राह्मण शूद्र हो सकता है ।

केवल किसी कुल मे उत्पन्न होने मात्र से वह उस कुल का नहीं बन जाता, अपितु उस के आचार से उस के कुल का निश्चय होता है । आचार शील व्यक्ति इस लोक और परलोक में सुख का भागी होता है । जो द्विज पूर्व की संध्या करता है

और पश्चिम की नहीं करता उन सबको धर्मशील राजा शूद्र कार्यों में लगा दे।

कई क्षत्रिय जिन्होंने खेती बाड़ी या दूसरे धन्धे अखित्यार कर लिए थे अपने क्षत्रियत्व के अधिकारों को खो बैठे थे और उन की जातियां भी बदल गई थीं; इसी प्रकार कई वीर पुरुष—कई अवस्थाओं मे तो ग्रोहों के ग्रोह—अपनी निम्न जातियों से उन्नति करते करते क्षत्रिय बन गए। यदि किसी को एक जाति से निकाल दिया जाता था तो वह अन्य जाति में सम्मिलित हो जाता था। ऐसी घटनाएं हर रोज़ हुआ करती थीं।

ऐसी घटनाएँ केवल वैदिक हिन्दुओं मे ही—जो कि जात पात को मानते थे—नहीं हुआ करती थीं, अपितु अवैदिक हिन्दुओं में भी ऐसे ही होता रहता था। जिस प्रकार बौद्धकाल में एक परिवार में यदि पिता बौद्ध होता था तो माँ वैदिक धर्मानुयायी होती थी और पुत्र जैन, उसी प्रकार आज भी गुजरात मे जैनियों और वैष्णवों के तथा पंजाब और सिंध मे सिखों तथा सनातनियों के परस्पर विवाह-सम्बन्ध होते रहते हैं। कल जो हिन्दू थे वे आज के मानभाव, लिंगायत, सिख या सतनामी हैं, और आज के हिन्दू कल को लिंगाय तथा सिख बन सकते हैं।

'हिन्दू' शब्द के अतिरिक्त कोई और शब्द नहीं है जो हम लोगों की जातीय-एकता को सर्वांग पूर्ण प्रकट कर सके। हम में से कुछ आर्य थे और कुछ अनार्य; परन्तु आयर या नायर हम सब हिन्दू थे और हमारा एक खून था। हम से कुछ ब्राह्मण हैं

और कुछ शूद्र या पंचम—परन्तु ब्राह्मण या चांडाल हम सब हिन्दू हैं और हमारा एक खून है। हम में से कुछ दाक्षिणात्य हैं और कुछ गौड़, परन्तु गौड़ या सारस्वत—हम सब हिन्दू हैं और हमारा एक रक्त है। हम में से कुछ राक्षस थे और कुछ यक्ष; परन्तु राक्षस या यक्ष—हम सब हिन्दू हैं और हमारा एक खून है। हम मे से कुछ वानर थे और कुछ किन्नर, परंतु वानर या किन्नर—हम सब हिन्दू हैं और हमारा एक खून है। हम में से कुछ जैन हैं और कुछ जंगम; परन्तु जैन या जंगम—हम सब हिन्दू हैं और हमारा एक खून है। हम में से कुछ वेदान्ती हैं और कुछ ब्रह्मवादी, कुछ आस्तिक हैं और कुछ नास्तिक; परंतु नास्तिक या वेदान्ती—हम सब हिन्दू हैं और हमारा एक खून है। हम एक राष्ट्र ही नहीं, बल्कि एक जाति हैं। जन्म से ही हमारा एक समाज है। इस से महत्वपूर्ण और कौन सी बात हो सकती है। आखिर यह हृदयों की बात है। हम अनुभव करते हैं कि वही प्राचीन रक्त जो राम और कृष्ण, बुद्ध और महावीर, नानक और चैतन्य, बसव और माधव, रोहिदास और तिरुवेल्लवर की नसों में बहता था, वही रक्त आज हिन्दू जाति की नसो में प्रवाहित है और उसी से हमारी जाति के हृदय में धड़कन कायम है। हम महसूस करते हैं कि हम एक जाति हैं—ऐसी जाति जो रक्त के पवित्रतम बन्धनों से बंधी हुई है—और इस लिए यह हमें प्राणों से भी अधिक प्रिय है।

जहां तक मनुष्य का सम्बन्ध है, संसार मे एक ही जाति

है—वह है मानव जाति जो मानव-रुधिर ने जीवित है। इसके अतिरिक्त और सब बातें थोड़े समय के लिए सत्य मानी जा सकती हैं, मन को तसल्ली देने वाली हैं और आँशिक रूप से सत्य हैं। तुम जो जातियों के दर्मियान कृत्रिम सीमाएँ बांध रहे हो प्रकृति उन्हें प्रतिक्षण परे फेंकने का प्रयत्न कर रही है। रक्त को मिश्रित होने से रोकना मानो बालू के घरौंदे बनाना है। स्त्री पुँसा कर्षण सारे अवतारों की आज्ञाओं से भी अधिक शक्तिशाली सिद्ध हुआ है। फलतः अंडेमान के आदिवासियों की नसों में भी आर्य रुधिर की कुछ बूंदें हैं, इसी प्रकार आर्यों की नसों में वहां के लोगों के खून के क़तरे होना भी असंभव नहीं। सच्ची बात—जिस का कि हम दावा कर सकते हैं अथवा इतिहास जिस बात के कहने का हमें अधिकार देता है—तो यह है कि प्रत्येक व्यक्ति की नसों में मानव-जाति का रुधिर बह रहा है। विश्व के एक कोने से दूसरे कोने तक के लोगों की मौलिक एकता ही एकमात्र सत्य है।

वैसे भी देखा जाए तो संसार भर में हिन्दुओं और कदाचित् यहूदिओं को छोड़ कर ऐसी कोई जाति नहीं जो अपनी जातीय एकता का दावा कर सके। हिन्दू दूसरी जाति के हिन्दू से शादी कर के भले ही अपनी जाति का परित्याग कर दे, परन्तु वह 'हिन्दुत्व' से पृथक नहीं हो सकता। प्रत्येक हिन्दू जो किसी भी स्वदेशीय किसी आस्तिक अथवा नास्तिक दार्शनिक या सामाजिक पद्धति का माननेवाला है, अपने सम्प्रदाय से अलैहदा हो सकता

है, परन्तु अपने हिन्दुत्व से जुदा नहीं हो सकता, क्योंकि वह आधार मूल तत्व जो 'हिन्दुत्व' को निर्धारित करता है हिन्दू रुधिर की वरासित (दाय) है। इस लिए ऐसे प्रत्येक व्यक्ति के विषय में, हम यह निःसंकोच कह सकते हैं कि उस में 'हिन्दुत्व' के लिए परमावश्यक दो आधारभूत तत्व विद्यमान हैं, जो (१) सिंधु नदी से सिंधु (समुद्र) पर्यन्त फैले हुए देश को पितृ भूमि मानता हो और (२ जिस की नसों में हिन्दू जाति के पूर्वजो का —जिन्हें हम सप्त-सिंधु कहते हैं—खून प्रवाहित हो।

परन्तु हिन्दुत्व के इन दोनों आधार भूत तत्वों [(१) पितृ भूमि (२) खून का रिश्ता] से 'हिन्दुत्व' की परिभाषा अपूर्ण ही रहती है। क्योंकि यदि ऐसी बात हो तो भारतीय मुसलमानों की बहुसंख्या यदि अज्ञान से उत्पन्न पक्षपात को छोड कर हिन्दू-स्थान को अपनी पितृभूमि मानने लग जाएँ, जैसा कि बहुत से देश भक्त और श्रेष्ठ मुसलमान सदा से करते आए हैं, तो क्या हम उन्हें हिंदू कहने लग जायेंगे ? इसी प्रकार कई मुसलमान जो हिन्दुओं से मुसलमान बने हैं और जिन मे से लाखों को ज़बर्दस्ती मुसलमान बनाया गया था—जो यह जानते हैं कि उन की नसों मे हिन्द-रुधिर ही विद्यमान है, क्या कभी हिन्दू कहला सकते हैं ? काश्मीर और हिन्दुस्तान के बहुत से मुसलिम फ़िरके तथा दक्षिण भारत के ईसाई अब भी हमारी जात-पात पद्धति को मानते हैं और अपनी ही बिरादरियों में शादी-विवाह करते हैं। तो भी यह स्पष्ट है कि यद्यपि उन के हिन्दू

खून में किसी प्रकार का विकार नहीं आया परन्तु फिर भी वे वास्तविक अर्थों में हिन्दू नहीं कहला सकते। क्योंकि हम हिन्दू पितृभूमि और एक खून के रिश्ते से ही नहीं बधे हुए अपितु हम उस एक महान सभ्यता—हिन्दू संस्कृति के प्रति श्रद्धा-सूत्र से भी बंधे हुए हैं। हम हिन्दू इस लिए एक हैं क्योंकि हम एक राष्ट्र हैं, एक जाति हैं और हमारी एक संस्कृति है।

पर सभ्यता किस वस्तु का नाम है ? सभ्यता मनुष्य के मन का वर्णन है—मनुष्य ने प्रकृति को जो रूप दिया है उस का उल्लेख है। यदि प्रकृति परमात्मा की सृष्टि है तो सभ्यता मनुष्य की दूसरी सूक्ष्म आकार वाली सृष्टि है। इसे हम आत्मा की प्रकृति और मनुष्य पर विजय का नाम भी दे सकते हैं। जहां कहीं और जहां तक मनुष्य प्रकृति को आत्म-सन्तुष्टि के लिए ढालने में सफल हो सका है, वहां ही सभ्यता का प्रारंभ हुआ है। और सभ्यता तब विजयी होती है जब मनुष्य दैवीय आनन्द के सम्पूर्ण स्रोतों को प्रयोग मे लाता है और शक्ति, सौदर्य और प्रेम के प्रति अपनी आत्मा की सभी इच्छाओं को संतुष्ट करता है और जीवन की सम्पूर्णता और वैभव को अनुभव करता है।

एक राष्ट्र की सभ्यता की कहानी उस राष्ट्र के विचार, कर्म और उस के वीरता पूर्ण कार्य है। साहित्य और कला जाति के विचारों को प्रकट करते हैं, इतिहास और सामाजिक संस्थाएं इसके कर्मो और वीरतापूर्ण कार्यों का दिग्दर्शन कराते

ई मनुष्य भी अपने आप को इन में से किसी से भी पृथक् नहीं रख सकता। अंडेमान की प्रारंभिक डुंगी आज के अमेरिकन जंगी जहाज़ों पर अपने प्रभाव का दावा कर सकती हैं। तो भी डुंगी डुंगी ही रहेगी और जंगी जहाज़ जंगी जहाज़ ही। वे एक दूसरे से एक समान होने की अपेक्षा भिन्न अधिक है। हम उन्हें एक नहीं कह सकते। इसी प्रकार यद्यपि हिन्दुओं ने और लोगों की तरह बहुत कुछ उधार दिया है और बहुत कुछ उधार लिया है तो भी उन की सभ्यता इतनी विलक्षण है कि हम उसे किसी दूसरी सभ्यता का अंश नहीं कह सकते। दूसरे हिन्दुओं के पारस्परिक चाहे जितने मत-भेद हों, वे एक दूसरे से भिन्न होने की अपेक्षा समान अधिक हैं, उनका इतिहास, साहित्य और सभ्यता एक है।

यह बात उन लोगों को झूठ जान पड़ेगी, जो कि स्वार्थ या अज्ञानपूर्ण चीख़ोपुकार का शिकार हो गए हैं—जिसने वर्तमान संसार के कानों को वश में कर रखा है—कि हिन्दुओं का अपना कोई इतिहास नहीं है—ऐसा कहने पर भी यह सत्य सत्य ही रहेगा कि हिन्दू ही एक ऐसी जाति है जिस ने अपने इतिहास को भूकम्पों और बाढ़ों से भी सुरक्षित रखा है। यह इतिहास वेदों से आरंभ होता है जो कि हमारी जाति की कहानी का प्रथम अध्याय हैं जो कि अब भी विद्यमान हैं। नन्हीं बच्चियां जो पालनों में सर्व प्रथम गीत सुनती हैं वे सीता देवी के गीत होते हैं। हम में से कुछ राम को अवतार के रूप में पूजते

हैं, कुछ उस की शूरवीर और योद्धा के रूप में प्रशंसा करते हैं, पर सब उसे अपनी जाति का सर्व श्रेष्ठ प्रतिनिधि राजा मानते हैं। हनुमान और भीमसेन के नामों से अब भी हिन्दू युवकों में शक्ति का संचार हो जाता है, और सावित्री और दमयन्ती हिन्दू युवतियों के लिए सतीत्व और पतिव्रत धर्म की मूर्तियां हैं; राधा कृष्ण के प्रेम की याद उसी समय ताज़ा हो जाती है जब कोई हिन्दू अपनी प्रियतमा का मुख चूमता है। कौरवों पांडवों के भीषण युद्धों, अर्जुन-कर्ण तथा भीम-दुःशासन के द्वन्द युद्धों का, जो कुरुक्षेत्र के समर स्थल पर हज़ारों वर्ष पूर्व लड़े गए थे, आज भी भारतवर्ष मे एक कुटी से लेकर प्रासाद तक उसी जोश के साथ वर्णन होता है। अभिमन्यु जितना हमें प्यारा है उतना अर्जुन को भी शायद ही हो। उस कमलनैन युवक की मृत्यु का समाचार सुनकर उस के पिता ने जितने आँसू गिराए थे उतने ही प्रेम से उस की याद में लंका से लेकर काश्मीर तक—सारा हिन्दुस्तान आँसू बहाता है। इससे अधिक और क्या कहें ? चाहे हम कितने ही बिखर जाएँ, अकेले रामायण और महाभारत ही हमें एक राष्ट्र में ढालने के लिए पर्याप्त हैं। जब मै मेजनी की जीवनी पढ़ता हूं तब मैं चिल्ला उठाता हूँ 'वे कितने देशभक्त हैं'। जब मैं माधवाचार्य का जीवन वृत्तान्त पढ़ता हूँ तब मैं कह उठता हूँ 'हम कितने देश भक्त हैं'। पृथ्वीराज के पतन पर बंगाल रो उठता है, गुरुगोविन्द सिंह के बच्चों के बलिदान पर महाराष्ट्र आँसू बहाता है। सदूर उत्तर का आर्य-समाजी

इतिहासकार अनुभव करता है कि सदूर दक्षिण के हरिहर और बुक्का उसके लिए लड़े थे, और सदूर दक्षिण का सनातनी इतिहासकार यह महसूस करता है कि गुरु तेगबहादुर ने उसके लिए अपने प्राणों की बलि दी थी। हमारे सांझे राजे थे, हमारा सांझा राज्य था। हमारी सांझी शक्ति थी, हमारी विजय पराजय भी सांझी थी। मोकावसय्या, पिसाल, जयचन्द और काला पहाड़ के नाम सुनते ही हमारे सिर लज्जा से झुक जाते हैं। पर दूसरी ओर अशोक, भास्कराचार्य, पाणिनी और कपिल के नामों में वह शक्ति है कि उन के सुनते ही हमारे हृदयों में आत्म-अभिमान की एक लहर सी दौड़ जाती है।

कई बार कहा जाता है कि हिंदुओं में तो सदा से परस्पर कलह और युद्ध चले आए हैं—उनमें सङ्गठन व एकता कैसी? इस का मुंहतोड़ उत्तर यही है कि क्या अंग्रेज़ों में पारस्परिक युद्ध नहीं हुए? उनका तो सारा इतिहास ही इन्हीं गृह-युद्धों (civil wars) से भरा पड़ा है। वहां तो भिन्न-भिन्न-राज्य प्रदेशों, धर्मों, मत-मतान्तरों, श्रेणियों में सदा युद्ध होते रहे हैं; यही नहीं, वे तो अपनी सहायता के लिए स्वदेश में विदेशियों तक को निमन्त्रित करने से पीछे नहीं हटे। यही हाल इटली, जर्मनी, फ्रांस और अमेरिका का रहा है। क्या ऐसी दशा में भी उन्हें एक राष्ट्र व एक सांझे इतिहास के सूत्र में बंधा हुआ समझा जा सकता है? यदि हां—तब तो यह निश्चित प्रमाण है कि हिंदुओं का भी अपना एक संगठित राष्ट्र है। और

यदि आप समस्त हिन्दुओं को एक राष्ट्र नहीं मानते तो संसार भर में और कोई भो 'राष्ट्र' कहलाने का दावा नहीं कर सकता।

जैसे 'इतिहास' हमारी क़ौम के कारनामों की जीती जागती कहानी है, वैसे ही हमारा साहित्य हमारे समस्त ज्ञान और विचारों का स्रोत है। हमारे साहित्य का राष्ट्रभाषा 'संस्कृत' से गहरा सम्बन्ध है। संस्कृत हमारी मातृभाषा है और सभी अन्य भाषाओं का आदि मूल है। हमारे देवता, ऋषि, मुनि और कवि अपने विचार संस्कृत में ही प्रकट करते थे। हमारे उत्तम विचार, उद्देश्य और आदर्श सदा संस्कृत में ही प्रादुर्भूत हुए हैं। करोड़ों मनुष्यों के लिए संस्कृत 'देव भाषा' अर्थात् उनके पूज्य देवताओं की भाषा है, अन्यों के लिए यही उनके पूर्वजों की भाषा है; और सब की दृष्टि में यह सर्वोत्कृष्ट भाषा है। संस्कृत सब की सांझी पैतृक सम्पत्ति है जिस में से अन्य भाषाओं जैसे गुजराती, गरुमुखी, सिंधी, हिंदी, तामिल, तलेगु, महाराष्ट्री, मलयालम्, बंगाली और सिंघाली आदि को बड़ी सहायता मिलती है। यह राष्ट्र-भाषा हम सब के विचारों और उद्देश्यों को एक सांचे मे ढाल कर हमे एक अटूट सूत्र में बांधे हुए है। इसे केवल एक भाषा ही न समझिए, बहुतेरे हिंदुओं के लिए तो यह एक मंत्र है; और सब के लिए मधुर संगीत।

बहुत से जैनी वेदों को प्रमाण नहीं मानते परन्तु उन्हें भी वेदों से गहरा लगाव है क्योंकि वेद कौम की प्राचीनतम पुस्तक है जो सभ्यता के इतिहास पर प्रकाश डालती है। आदिपुराण जैनियों और सनातनी भाइयों की मान्य पुस्तक है, हालांकि उस का लेखक

सनातनी न था। लिंगायतों का धर्मग्रन्थ बसवपुराण हम सब हिंदुओं के लिए एक प्राचीन इतिहास के रूप में पूज्य है। गुरु गोविंदसिंह के 'विचित्र नाटक' पर बंगालियों का उतना ही हक़ है जितना 'चैतन्य चरित्रामृत' पर सिक्ख भाइयों का। कालिदास और भवभूति, चरक और सुश्रुत, आर्यभट्ट और वराहमिहिर, भास और अश्वघोष, जयदेव और जगन्नाथ, के लिखे हुए ग्रन्थ रत्न हम सब की सांझी सम्पत्ति हैं। उन्होंने इन ग्रन्थों को किसी जाति विशेष के लिए नहीं, परंतु हिंदु-राष्ट्र के लिए लिखा था। रवीन्द्रनाथ टैगोर और शेक्सपीयर की कृतियां यदि महाराष्ट्र के किसी हिन्दू के सम्मुख रखी जाएं तो वह अनायास पुकार उठेगा—रवीन्द्र! रवीन्द्र टैगोर ही हमारा है!!

कला और शिल्प कौशल के काम भी सब हिंदुओं की साँझी जायदाद हैं चाहे वे वैदिक अथवा अवैदिक काल और विचारों का प्रतिनिधित्व भले ही करते हों। आखिर वे सब मज़दूर, मिस्त्री, प्रजाजन और महाराजा जिनके सहयोग से इन कला-पूर्ण कृतियों का निर्माण हुआ, हिंदू ही तो थे। वे वैदिक थे या अवैदिक, थे तो सब उसी हिंदू राष्ट्र के अंग जिस की सीमा सिंधु (नदी) से सिंधु (समुद्र) तक फैली हुई है। आज कल के इन्हीं सनातनी भाइयों के सहयोग और परिश्रम से ही बौद्धों के कलापूर्ण मंदिर व भवन तैयार हो सके थे। और उस समय के बौद्धों की सहायता से ही आज कल के सनातनी हिंदुओं के लिए मंदिर आदि निर्मित हुए हैं।

हमारी जाति की मौलिक एकता के मुख्य कारण दो हैं—एक तो हमारी सांझी सभ्यता और दूसरी हमारी एक-सी न्याय-धर्म प्रणाली (स्मृति), हिंदू स्मृति जिस का आधार हिंदू-न्याय-प्रणाली पर है, सर्वथा मौलिक है। समय-परिवर्तन के साथ उसमें भेद करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। हां, यह सम्भव है कि सरसरी नज़र से देखने पर उस में कुछ त्रुटियां दीख पड़ें। अमेरिका और ब्रिटिश साम्राज्य में आए दिन न्याय-विधान मे भारी परिवर्तन होते रहते हैं और उन्हे सदा नये क़ानून बनाने की आवश्यकता पड़ती रहती है, परंतु हमारी न्याय-स्मृति अपने मे सर्वथा सर्वाङ्ग सम्पूर्ण है। अंग्रेज़ों, अमेरिकनों अथवा रोमनो के क़ानून आज मिट चुके होते यदि उनमें आए दिन घटाव बढ़ाव न किए जाते। मुसलमानों के क़ानूनों में अभी तक अपनी मौलिकता सुरक्षित है, हालांकि मुसलमानों की कुछेक श्रेणियां जैसे खोजे और बोहरे कई विषयों में हिंदू-स्मृति को ही प्रमाण मानते हैं। पंजाब और महाराष्ट्र के हिंदुओं तथा सिंध-प्रांत के हिंदुओं के रीति-रिवाजों मे कुछ भेद भले ही हो, परंतु सब के न्याय-नियमों व क़ानूनों में एक ही स्मृति की गूंज पाई जाती है और उनमें प्रत्यक्ष समानता है। यदि किसी जाति की समस्त भिन्न २ प्रथाओं, नियमों और क़ानूनों को इकट्ठा किया जाए तो वे सब हिंदुओं की 'स्मृति' के अनुसार ही होंगे। लाख सिर पटकने पर भी आप उन्हे जापानियों, अंग्रेजों अथवा मुसलमानों के स्मृति-ग्रन्थों में न पा सकेंगे।

हम हिन्दुओं के सारे के सारे त्योहार, प्रथाएं, रस्मो-रिवाज सांझे हैं। हर हिंदू दुसहरा, दिवाली, होली और रक्षाबंधन का स्वागत करता है। दिवाली के दिन सिख, जैनी, ब्राह्मण, पंचम सभी प्रसन्न होते हैं। केवल भारतवर्ष में ही नहीं परंतु संसार के हर एक कोने में, जहाँ एक भी हिंदू का निवास है, दिवाली के दिन खुशियां मनाई जाती हैं। हिमालय की तराई के घने जंगलों में यदि एक भी हिन्दू का टूटा-फूटा झोंपड़ा होगा तो वहां भी दिवाली के दिन छोटा सा दीपक अवश्य उजाला करेगा। रक्षा-बंधन के दिन हिन्दू घरों में स्त्रियां—पंजाब की सुन्दरियों से लेकर मद्रास की ब्राह्मण स्त्रियों तक—सभी अपने भाइयों को राखी बांधती हैं। और इस तरह से भाई बहिनों के हृदय प्रेम के एक सूत्र में गूंथ दिए जाते हैं। इन सब बातों के होते हुए भी हम हिन्दुओं को एक धर्म के नाते से एक राष्ट्र मानने में पीछे हटते रहे हैं। हमने अभी तक किसी धार्मिक प्रथा अथवा घटना की राष्ट्रीय महत्ता का वर्णन नहीं किया क्योंकि हम हिन्दुत्व की परिभाषा किसी 'वाद' के दृष्टिकोण से नहीं, परन्तु एक राष्ट्र के दृष्टिकोण से कर रहे थे। हालांकि केवल राष्ट्रीय अथवा जातीय दृष्टिकोण से ही हमारे भिन्न २ तीर्थ-स्थान हिन्दुओं के एक राष्ट्र होने का प्रमाण हैं। अमृतसर की बैसाखी, जगन्नाथ की रथयात्रा और कुम्भ और अर्ध-कुंभ के भारी मेले सब हमारे एक प्रकार के सम्मेलन थे जहां से हिन्दुओं की जीवन और विचार-धारा चारों ओर फैलती थी। इन मेलों के अद्भुत रस्मो रिवाज और रीतियां कईयों के लिए

धार्मिक कृत्य और अईयों के लिए सामाजिक कृत्य थीं। इन से हर एक हिन्दू के हृदय में विश्वास हो जाता था कि हिन्दू-समाज और राष्ट्र का एक अंग बन कर जीवन बिताना ही उसके लिए हितकारी है।

संक्षेप में—क्योंकि हमारा मुख्य विषय हमे इस बारे मे विस्तार की गुंजाइश नहीं देता—हमारी सांझी सभ्यता ही हमें एक 'इकाई' बनाने के लिए पर्याप्त है। हम सब हिन्दू न केवल एक राष्ट्र और एक जाति हैं, परन्तु इनके फल स्वरूप हमारी सांझी संस्कृति भी है जिसकी व्याख्या हमारी जाति की राष्ट्र भाषा संस्कृत में की हुई है। हर हिन्दू को यह संस्कृति पैतृक सम्पत्ति के रूप में मिलती है। और हर हिन्दू वैसे ही अपनी आत्मिक सत्ता के लिए संस्कृति का ऋणी है जैसे कि वह अपने शरीर के लिए अपनी मातृभूमि और अपने पितरों का ऋणी है।

इससे सिद्ध हुआ कि हिन्दू वही है जो उस भूमि को, जो सिन्धु (नदी) से सिन्धु (समुद्र) तक फैली हुई है, अपने पित्रों की भूमि मानकर, बड़े प्रेम से पूज्य समझता है—उसे ही पितृ-भूमि मानता है। जिसकी नसों में उस जाति के महापुरुषों का खून दौड़ता है जिन्हे 'सप्त सिन्धु' कहा जाता है। हिन्दू वही है जो ऊपर लिखी विशेषताओं के कारण हिन्दू संस्कृति और हिंदू सभ्यता को अपनाता है, और हमारी सभ्यता वही है जो कि हमारे सांझे इतिहास, कला, स्मृति, न्याय-विधान

और हमारे सांझे उत्सवों, मेलों, रीति-रिवाजों, रस्मों और धार्मिक क्रियाओं में पाई जाती हैं।

संस्कृति के दृष्टिकोण से हिंदुओं की परस्पर समानता का अभिप्राय विचारों की अनिवार्य और एकान्तिक समानता से नहीं है। उसका अभिप्राय यही है कि एक हिंदू के विश्वासों का सादृश्य हिंदू संस्कृति से जितना होगा उतना अरब व इंग्लिश संस्कृति से नहीं होगा। समानता शब्द आपेक्षिक है। उससे नितांत समानता का भाव नहीं लेना चाहिये। जब यह कहा जाता है कि एक अंग्रेज़ व ईसाई या मुसलमान की हिंदुओं से समता नहीं तो इसका यह अभिप्राय है कि एक इंगलिशमैन का एक इङ्गलिशमैन से या उसकी संस्कृति से जितना सादृश्य है उतना हिंदुओं से नहीं हैं। अथवा हिंदुओं से जितना सादृश्य है उससे अधिक भिन्नता है। इसी कारण हम हिंदुओं से मुसलमान व ईसाई बने हुए लोगों को, उनकी नसों में हिंदू पूर्वजों का रक्त होते हुए भी, हिंदू नहीं कह सकते। कारण उन्होंने हिंदू संस्कृति का परित्याग कर ऐसी संस्कृति को स्वीकार कर लिया है जो हिंदू संस्कृति से सर्वथा भिन्न है। उनके मान्य पुरुष, उनके त्यौहार, उनके देवी देवता, उनके जीवन का दृष्टिकोण अब हम से बिल्कुल जुदा हो गया है। अतः हिंदुत्व' की तीसरी कसौटी पर वे पूरा नहीं उतरते।

यदि एक 'बोहरा' या 'खोजा' ऐसा है जो देशभक्त है, जो हिंदुस्थान को अपनी मातृभूमि मानता है और हिंदुस्थान के

पूर्वजों को अपना पूर्व पुरुष; जिस की नस में विशुद्ध हिंदू रक्त है, जिसने इसी वंश में धर्म-परिवर्तन किया है, जो इतना बुद्धिमान और उदार है कि हमारे महापुरुष को उतने ही सन्मान व पूज्य भाव से देखता है जितना हम; जो हमारे दस अवतारों को अवतार मानता है और मुहम्मद को ११ वां अवतार, तब वह हिंदुत्व की तीनों कसौटियों पर निर्दोष सिद्ध होने के कारण हिंदू कहला सकता है। यह आवश्यक नहीं कि वह हिंदुओं के सभी छोटे-मोटे त्यौहारों का उसी विधि से पालन करे जैसे हम करते हैं, अथवा हमारे सैंकड़ों देवी देवताओं की उसी भाव से पूजा करे। ऐसी गहराई के भेद उसे हम से भिन्न नहीं कर सकते। हिंदुओं में भी कितने ही लोग ऐसे हैं जो इन बारीकियों को नहीं मानते। त्यौहारों को मानने की विधि भी बहुत भिन्न है। फिर इस भिन्नता के कारण हम एक देशभक्त बोहरा या खोजा को भी हिंदू पद देने से इंकार नहीं कर सकते।

जहां तक इन तीन लक्षणों का सम्बन्ध है, हमें उनको हिंदु कहना पड़ेगा। किंतु अभी एक कसौटी और शेष है। उसका हिंदुत्व की धार्मिक विशेषता से सम्बन्ध है। हमने अभी तक हिंदू संस्कृति में ही धर्म का समावेश किया है, धार्मिक भेद की अलहदा व्याख्या नहीं की। अब हम उस पहलू पर ज़रा विस्तार से विचार करेंगे। विस्तार से विचार करने के लिये ही हमने इस विषय को अलहदा रखा है। अब हम हिंदुवाद और हिंदुत्व की परिभाषाओं पर भी गहराई से विचार करने योग्य हो गये हैं।

———

६

'हिन्दूत्व' और 'हिन्दूवाद' (Hinduism)—'हिन्दू' शब्द से ही निकले हैं। इस लिए, ज़रूरी तौर पर इन दोनों शब्दों का सांकेतिक सम्बन्ध सम्पूर्ण हिन्दू जाति से है। 'हिन्दूवाद' शब्द की कोई भी परिभाषा निर्जीव और दोषयुक्त है यदि उस से हमारी जाति का कोई अङ्ग बाहर छूट जाता है और उसे हिन्दुत्व की सीमा से दूर ही रहना पड़ता है। 'हिन्दूवाद' समस्त हिन्दुओं के सांझे और सदृश धार्मिक विश्वासों का बोधक है। और, इस बात का पता लगाने के लिए हिन्दुओं के धार्मिक विश्वास क्या हैं, अर्थात् 'हिन्दुवाद' का वास्तविक अर्थ क्या है, हमें पहिले 'हिन्दू' की परिभाषा करनी होगी।

कुछ लोग 'हिन्दू' का असली अर्थ समझे बिना ही 'हिन्दू-वाद' के मूल तत्वों का विश्लेषण करना शुरू कर देते हैं। पर, जब उन्हें एक भी ऐसा तत्व नहीं मिलता जिससे हिंदूजाति के सब अङ्गों को एक सूत्र में पिरोया जा सके, तो उन्हें घोर निराशा होती है। और वे एकदम इस गलत परिणाम पर पहुंच जाते हैं कि कई (हिन्दू) जातियों को हिन्दू कहलाने का अधिकार

नहीं है। इस परिणाम से शायद उन्हें स्वयं भी पूरा सन्तोष नहीं होता। उनके ऐसा करने का कारण असल में एक तो यह है कि इन महाशयों की परिभाषा ही भ्रान्तिमूलक होती है और दूसरे, वे जिन नियमों का पालन हर हिन्दू के लिए आवश्यक समझते हैं, वे इन हिन्दू धर्म से बहिष्कृत जातियों पर पूरे नहीं घटते। इस तरह से 'हिन्दू' की परिभाषा करना और कुछ जातियों को हिन्दू धर्म से बाहिर समझना, बिल्कुल बेसमझी है। इसी नादानी की वजह से हिन्दू जाति के कुछ अङ्गों में जैसे सिखों, जैनियों, देवसमाजियों और यहां तक कि देश-भक्त और उन्नतिशील आर्यसमाजियों में भी हिन्दू धर्म के प्रति मनोमालिन्य व कटुता पैदा हो गई है।

'हिन्दु' कौन है?—वही, जो हिन्दूवाद के नियमों पर चले। बहुत अच्छा, तो 'हिन्दूवाद' किसे कहते हैं?—उस नियम-विधान को जिसे हिन्दू मानते व पालते हैं। ऐसी परिभाषाएं हमें चक्कर में डाल देती हैं और कोई सन्तोषजनक हल नहीं मिलता। हमारे कुछ एक मित्र जो इन्हीं भ्रान्ति-जनक बातों के चक्कर में पड़े रहे, आखिर थक कर इस नतीजा पर पहुंचे कि—'हिन्दू' नाम की कोई जाति ही नहीं है। इसी तरह हिंदुस्तानी भी, उस अंग्रेज की तरह जिसने 'हिंदूवाद' (Hinduism) शब्द निकाला और आखिर इस नतीजे पर पहुंचा कि 'हिदू' कोई जाति है ही नहीं, उसी तरह अंग्रेज़वाद (Englishism) शब्द बनाकर उस शब्द के मूल तत्वों के आधार पर सारी अंगरेज़ कौम में एकता

और एक राष्ट्र के चिह्न ढूंढता हुआ अंग्रेज़ों की सैंकड़ों श्रेणियों और जातियों, मतों मतांतरों के चक्कर में पड़कर आखिर यही नतीजा निकाल सकता है कि अंग्रेज़ नाम की तो कोई कौम है ही नहीं और न हो सकती है। इस तरह से ग़लत परिणामों पर पहुंचने का असली कारण क्या है? सच तो यह है कि सब भ्रांति 'हिंदुत्व' और 'हिंदुवाद' दो अलग २ शब्दों के पर्यायवाची समझे जाने से होती रही है।

हिंदूवाद का अर्थ है हिंदुओं का 'वाद' अथवा धर्म। 'हिंदू' शब्द सिंधु नदी से निकला है, अर्थात् वे सब हिंदू हैं जो सिंधु नदी से लेकर सिंधु (समुद्र) तक फैली हुई भूमि के निवासी हैं। 'हिंदूवाद' का अर्थ इस तरह यही हुआ कि 'सिंधु' प्रदेश के निवासियों के भिन्न २ धर्म अथवा एक धर्म। यदि हम हिंदुओं के भिन्न २ विचारों, विश्वासों और नियमों को एक केंद्रीय रूप नहीं दे सकते तो इसका अर्थ यह तो हो सकता है कि हिंदूवाद कोई निश्चित धर्म-विधान नहीं है—इसमें हिंदुओं की सभी अलग अलग श्रेणियों का भी समावेश है। परन्तु, इससे यह परिणाम कदापि नहीं निकाला जा सकता कि हिंदुओं का एक अपना राष्ट्र नहीं है। 'हिंदूवाद' भले ही एक निश्चित विधान (System) न हो, तो भी 'हिंदू-राष्ट्र' की सत्ता से कोई इन्कार नहीं कर सकता। इसी ग़लतफ़हमी से हिंदू धर्म के कुछ अवैदिक अंगों और वैदिक हिंदू भाईयों मे परस्पर बहुत खींचातानी होती रही और मनोमालिन्य बढ़ता रहा। अवैदिक हिंदू भी हिंदू ही हैं।

यहाँ हम हिंदूवाद के तत्वों की व्याख्या नहीं करेंगे क्योंकि हमारा विषय परिमित है। जैसा कि हमने ऊपर भी कहा है कि हिंदूवाद के बारे में कुछ भी कहने सुनने से पहले हमें इस बात का निश्चय करना नितांत आवश्यक है कि हिंदू कौन है ? और 'हिंदुत्व' के अधारा-तत्व क्या हैं ? क्योंकि 'हिंदुत्व' के आधार-तत्वों के समझ लेने पर ही 'हिंदू' शब्द की परिभाषा हो सकेगी इसलिए फ़िलहाल 'हिंदुवाद' पर कुछ लिखना युक्त और विषय-संगत न होगा। हां, जहां कहीं आवश्यकता प्रतीत होगी वहां "हिंदूवाद' के विषय में भी हम कुछ अवश्य कहेंगे। असल में 'हिंदूवाद' शब्द का प्रयोग तो वहीं होना चाहिए जहां हिंदुओं की भिन्न २ श्रेणियों के धार्मिक विश्वासों व मंतव्यों से अर्थ हो। परन्तु प्रायः लोग 'हिंदूवाद' का प्रयोग वहां करते हैं जहां उनकी मुराद हिंदू धर्म से होती ह। यह तो स्वाभाविक है कि किसी भी देश, धर्म व जाति का नाम प्रायः उसके लोगों की किसी विशेष बात या स्वभाव के आधार पर ही रखा जाता है। और ऐसा नाम व्यवहार मे भी सुगम रहता है। परन्तु हमें केवल सुगमता को ही नहीं देखना चाहिए। यदि कोई नाम गलतफ़हमी पैदा करने के इलावा उस जाति, धर्म अथवा देश के लिए हानिकारक भी हो तो उसे उसी वक्त हटा देना चाहिए, हिन्दुओं की बहु संख्या के धर्म का नाम हिन्दुवाद नहीं हो सकता, उसे तो हम 'श्रुतिस्मृतिपुराणोक्त' धर्म अथवा सनातन धर्म कह सकते हैं! उसे वैदिक धर्म भी कहा जा सकता है।

अब कुछ ऐसे हिन्दू भाई भी हैं जो पुराण, स्मृति और श्रुति को धर्म-ग्रंथ के रूप में प्रमाण मानने मे थोड़ा बहुत एतराज़ रखते हैं। परन्तु, यदि 'हिन्दू धर्म' से तात्पर्य यही निकालें कि 'हिन्दुओं की बहु-संख्या का धर्म' और उसे 'सनातन हिन्दूधर्म' कहें तो अल्प संख्यकों को भारी एतराज़ रहेगा कि उन से अन्याय हुआ है। वे भी अपने धर्म का अलग नाम रखना चाहेंगे। वे भी सच्चे हैं, क्योंकि यदि हिन्दू धर्म से मुराद सनातन धर्मी हिन्दुओं से हो तो वे अल्प संख्यक, जिन्हें श्रुति पुराणों और स्मृति पर पूरा विश्वास नहीं हैं, सब हिन्दू न कहला सकेंगे। उनका धर्म 'हिन्दुवाद' न हो सकेगा! यह कुछ अजीब सी हालत हैं, न तो वे 'श्रुतिस्मृति पुराणोक्त' धर्म के अनुयायी कहलाना चाहते हैं और न वे इस हिन्दू धर्म से बाहिर होना चाहते हैं। ऐसी अवस्था में करोड़ों सिख, जैनी, लिंगायत व कुछ समाजी और कुछ अन्य लोग बहुत बुरा मान जाएं यदि उन्हें यह बताया जावे कि अब से वे यकदम 'हिन्दू' होने से हट गए हैं। वे ही अब हिन्दू न कहला सकेंगे जिनके पिता पितामहो की नसों में विशुद्ध हिन्दू रक्त बहता था। ऐसा सोचना अथवा समझना भी निराधार और अन्याय होगा। परन्तु इन्हीं में से कुछ एक ने बिना कहे सुने अपने आप ही यह निश्चित मान रखा है कि अब उनके लिए दो ही मार्ग खुले हैं—या तो वे उन्हीं सनातन परम्पराओं में विश्वास करें जिन्हे उन्होंने अन्धविश्वास समझ कर छोड़ दिया था, नहीं तो वे उस हिन्दू

जाति के अंग न बन सकेंगे जिस में उनके पिता-पितामहों ने जन्म लिया था।

यह सब मनोमालिन्य हिन्दूवाद शब्द के गलत अर्थ करने पर हुआ है। 'हिन्दुवाद' का अर्थ हिन्दुओं की बहुसंख्या का धर्म नहीं करना चाहिए। या तो 'हिन्दूवाद' का अर्थ समस्त हिंदुओं के धर्म से लेना चाहिए नहीं तो इस शब्द का भी प्रयोग न करना चाहिए। हिन्दुओं की बहुसंख्या का युक्त संगत नाम तो 'सनातन धर्म' अथवा 'श्रुतिस्मृतिपुराणोक्त' धर्म या 'वैदिक धर्म' होना चाहिए और बाकी हिंदुओं को हम उनके भिन्न २ मतों जैसे सिख धर्म, जैन धर्म, आर्य धर्म, बौद्ध धर्म के नाम दे सकते हैं। और जब हमें समस्त हिंदुओं के धर्मों को सामूहिक रूप में एक नाम देना पड़े, तो हम 'हिंदू धर्म' अथवा 'हिंदुवाद' का ही प्रयोग करेंगे। यह प्रयोग संक्षिप्त और शुद्ध होने के इलावा सर्वथा युक्त भी है, इसमे गलतफ़हमी की रत्ती भर भी गुञ्जाइश नहीं रहती। इस तरह न तो बहुसंख्यक हिंदुओं को कोई एतराज़ रहेगा और न ही अल्पसंख्यकों को किसी प्रकार की शिकायत। एक बार फिर सब हिंदू एक सांझे राष्ट्र और सभ्यता के झंडे तले इकट्ठे हो सकेंगे।

वेद ही भारतवासी किसी भी जाति के धार्मिक कृत्यों के प्राचीनतम प्रमाण हैं। सप्तसिंधुओं का वैदिक राष्ट्र कई जातियों और श्रेणियों में विभक्त था। उस समय भी अधिकांश लोग उस धर्म में आस्था रखते थे जिसे हम वैदिक धर्म कहते हैं, परन्तु तब

भी सिन्धुओं की एक अल्पसंख्या वैदिक धर्म को नहीं मानती थी। पणी, दास, व्रत्य आदि कई जातियां वैदिक धर्म से विमुख रहती थीं, परन्तु राष्ट्रीय और जातीय तौर पर वे और सब अन्य हिन्दू अपने को एक इकाई समझते थे। उस समय हिन्दू-धर्म तो अवश्य था, परन्तु सब के लिए समान 'सिन्धु धर्म' न था। 'सिन्धु धर्म' शब्द का अर्थ केवल एक ही हो सकता है और वह यह कि सप्त-सिन्धु देश के सब निवासियों का एक या एक से अधिक धर्म। समय के चक्र के साथ घटते-बढ़ते सिन्धुजाति ही हिन्दू-जाति में परिणत हो गई और सिंधुस्थान ही हिंदुस्थान हो गया। उधर इस अरसे में सनातन हिन्दुओं और अन्य हिन्दुओं ने, जिन्हें श्रुतिस्मृति पुराण में पूरा विश्वास नहीं, धर्म के भिन्न २ पहलुओं की बड़ी खोज की। परमाणु से परब्रह्म तक उन्होंने सब वस्तुओं का गहरा अन्वेषण किया और सिद्ध कर दिया कि हिंदू धर्म मे सब दृष्टि-कोणो का समन्वय है। नास्तिक से लेकर आस्तिक तक, सब के लिए, यदि वे सत्य को खोजना और पाना चाहते हैं, हिन्दूधर्म में स्थान है। यह परिणाम उनकी गहरी खोज, अनुभव और परिश्रम का फल है। हिंदुधर्म का 'सत्य' ही ध्येय है और आचरण इस आदर्श पर पहुंचने की सीढ़ी है। हिंदू धर्म न केवल वैदिक और न ही केवल अवैदिक है—इसमें दोनों का समावेश है, यह तो क्रियात्मक धर्म-विज्ञान का नाम है। यही हिंदूधर्म का वास्तविक रूप है, इसमें वैदिक, सनातनी, जैन, बौद्ध,

सिख और देवसमाजी आदि हिंदु धर्म की शाखाओं के विस्तृत अनुभवों का सार भरा पड़ा है। ये सब धर्म की शाखाएं जो कि वैदिक अथवा अवैदिक धार्मिक मन्तव्यों का परिणाम हैं, वास्तव में हिन्दु धर्म का ही एक जीवित अंग हैं।

अतः सनातन धर्म और वैदिक धर्म दोनों ही हिन्दू धर्म के अंग हैं, भले ही इन दोनों के अनुयायी करोड़ों की संख्या मे हों। स्वर्गीय लोकमान्य तिलक ने इसी प्राचीन हिंदु धर्म की निम्नश्लोक में परिभाषा की थी—

प्रामाण्यबुद्धिर्वेदेषु साधनानामनेकता।
उपास्यानामनियम एतद्धर्मस्य लक्षणम्॥

उन्होंने अपने एक विद्वत्तापूर्ण लेख मे जो कि 'चित्रमय जगत्' मे छपा था, अपनी सूक्ष्मदर्शिता का परिचय देते हुए इस हिन्दु धर्म की परिभाषा को उसके वास्तविक स्वरूप में दिखाने की कोशिश की है। उसमें उन्होंने हिन्दुत्व नहीं, परन्तु हिन्दु धर्म के दृष्टिकोण से ही सब कुछ लिखा है, और उन्होंने इस बात को स्वीकार किया है कि इस परिभाषा के अनुसार आर्यसमाजी और हिन्दुओं के कई अन्य अंग जो कि जातीय और राष्ट्रीय रूप मे पक्के हिन्दू हैं, हिन्दू नहीं कहला सकते। यह परिभाषा इतनी संकीर्ण है कि हिन्दुत्व का तो कहना ही क्या; हिन्दुधर्म पर भी पूरी नहीं घटती। हाँ, सनातन धर्म अथवा श्रुतिस्मृति-पुराणोक्त धर्म की यह परिभाषा हो सकती है। सनातन धर्म

हिन्दुधर्म का सब से मुख्य अङ्ग है इसीलिए ग़लतफ़हमी से सनातन धर्म ही हिन्दु धर्म समझा जावेगा।

हिन्दु धर्म में, जो कि शाब्दिक, वास्तविक और धार्मिक अर्थों में सारे हिन्दुओं का धर्म है, हिन्दू मात्र की सब विशेषताएं स्वयमेव ही आ जाती हैं। यह तो निश्चय हो ही चुका है कि हर हिन्दू के लिए मुख्य गुण यह होना चाहिये कि वह सिन्धु से सिन्धु (समुद्र) तक फैले हुए प्रदेश को अपनी पितृभूमि और मातृभूमि मानें। धर्म के ये सब अङ्ग, वैदिक अथवा अवैदिक जिन्हे हम 'हिंदु धर्म' के नाम से कहते हैं, उसी तरह इसी भूमि की उत्पत्ति है जैसे कि इन धर्मों के प्रवर्तक और अनुयायी इस देश की सन्तान हैं। सिन्धुस्थान ही हिंदुधर्म और उसके अंगों का उत्पत्ति स्थान है और यहीं इनका प्रचार हुआ। जैसे कट्टर पथी श्रद्धालु भक्त गङ्गा की उत्पत्ति विष्णु के चरण-कमलों से मानते हुए भी, पृथ्वी लोक के लिए तो उसे हिमालय पर्वत की संतान ही समझते हैं, वैसे ही यह सिंधुस्थान उस तत्वज्ञान का स्रोत है जिसे हम हिन्दु धर्म कहते हैं। हिंदुत्व का दूसरा मुख्य तत्व यह है कि हिंदू वही है जिसके पूर्वज हिंदू हैं और जिस की नसों मे प्राचीन सिंधु वीरों का रक्त हिलोरें मार रहा है। यह गुण हिंदुधर्म की भिन्न २ शाखाओं के लिए भी आवश्यक हैं क्योंकि इन शाखाओं के प्रवर्तक हिंदू ऋषि-मुनि ही थे और वे नैतिक, सांस्कृतिक और आत्मिक रूप से सप्तसिंधुओं की ही संतान थे। हिंदुधर्म केवल स्वाभाविक वातावरण और हिंदुओं

की विचारधारा का परिणाम ही नहीं अपितु इसमें हिंदु संस्कृति का भी गहरा हाथ है। हिंदु संस्कृति के विभिन्न पहलु जो हमें दृष्टिगोचर होते हैं उन सब पर हिंदु संस्कृति की अमिट छाप पड़ी होती है। किसी भी काल को लीजिए चाहे वह वैदिक हो अथवा बौद्ध या जैन—इन सब पर हिंदु संस्कृति की छाया पड़ी हुई है। आधुनिक काल के सुधारकों जैसे चैतन्य, चक्रधर, बसव, दयानन्द, नानक अथवा राजा राममोहन इन सब के विचारों में हिंदु संस्कृति की झलक स्पष्ट दीखती है। हिंदुधर्म का हर पहलु अपनी जीवन-शक्ति हिंदु संस्कृति से ही लेता है। और, हिंदु मात्र के धर्म का इस भूमि से इतना गहरा सम्बन्ध है कि हिंदुस्तान हिंदुओं के लिए न केवल पितृभूमि ही है, परन्तु पुण्यभूमि भी है।

हाँ, यह भारत भूमि, यह सिंधुस्थान, यह हमारी मातृभूमि जिसका विस्तार सिंधु से सिंधु (समुद्र) तक है हमारे लिए पुण्यभूमि भी है। क्योंकि इसी भूमि पर हमारे धर्म के प्रवर्तकों, वेदों के ज्ञानवान् ऋषियों से लेकर स्वामी दयानन्द तक, जिन से महावीर तक, बुद्ध से नागसेन तक, नानक से गोविन्द तक, बंदा बहादुर से बसव तक और चक्रधर से चैतन्य तक और रामदास से राममोहन तक हमारे महापुरुषों, गुरु-जनों और महात्माओं ने जन्म लिया, इसी भूमि पर वे फले फूले। इस देश की मिट्टी में से हमारे ऋषि और आचार्यों के चरण चिन्हों की प्रतिध्वनि उठ रही है। धन्य और पूज्य हैं इस देश की नदियां और सघन

बन जिनके घाटों पर और छाया के नीचे हमारे महापुरुषों ने भगवान् बुद्ध, और शंकर ने इस जीवन की जटिल समस्याओं-ब्रह्म और माया के पेचीदा रहस्यों-को हल किया। हाँ, यही घाटियां और पहाड़ियां हमें आज भी कपिल, व्यास, शंकर और रामदास जैसी विभूतियों का स्मरण करा देती हैं। यही वह पुण्यभूमि है जहां भगीरथ ने राज्य किया था, और कुरुक्षेत्र की भूमि है। यह वह स्थान है जहां श्री रामचन्द्र जी ने अपने बनवास काल म प्रथम बार आश्रय लिया, जहां सीता ने स्वर्ण मृग को देखा और अपने प्रियतम को उसे मारने के लिए कहा। यह वह स्थान है जहां भगवान् कृष्ण चन्द्र अपनी बांसुरी की तान से गोकुल के प्रत्येक जीव को ऐसा मुग्ध कर दिया करते थे मानों वे मैस्मरेज़म की नींद में सो रहे हों। यहीं पर जगद्विख्यात बोधि वृक्ष है और यहीं पर भगवान महावीर ने निर्वाण प्राप्त किया। यहीं पर सैकड़ों के झुण्ड मे बैठे नानक बाबा गाया करते थे—गगनथाल रवि चन्द्र दीपक बने। यहीं पर राजा गोपीचन्द्र योगी गोपीचन्द्र बन गए, हाथ में कमण्डलु लिया और अपनी बहिन के दरवाज़े पर जाकर भिक्षा-याचना की! यहीं बन्दा बहादुर के लड़के को उसके पिता की आँखों के सामने टुकड़े-टुकड़े कर दिया गया और उसके खून से लथपथ कलेजे को बाप के मुंह पर फेंका गया—और यह नृशंस अत्याचार केवल इसलिए किया गया क्योंकि वह हिंदू था और हिंदू रहकर ही मरना चाहता था। इस भारतवर्ष के हर जर्रे और ईंट व पत्थर की अपनी एक खूनी कहानी है। इस हिन्दुस्थान

का चप्पा २ भाग हिन्दुओं की धर्म-हित कुर्बानियों का इतिहास लिए हुए है। हिन्दुस्थान पुण्य भूमि है, बलिदान भूमि है। काश्मीर से सिंहलद्वीप तक इस भूमि का हर भाग ज्ञान-यज्ञ अथवा आत्म-यज्ञ से पवित्र है। हिन्दुस्थान यज्ञीय भूमि है। हर हिन्दू के लिए यह पितृभूमि भी है और पुण्यभूमि भी।

अब यह स्पष्ट है कि हिन्दू वही है जो भारतवर्ष को पितृभूमि के अतिरिक्त पुण्यभू भी अवश्य माने। यही कारण है कि वे मुसलमान और ईसाई जो पहिले हिन्दू थे पर पीछे कई कारणों से दूसरे धर्म मे चले गए, हिन्दू कहलाए जाने के पात्र नहीं क्योंकि वे भारतवर्ष को पुण्यभूमि नहीं मानते, उनकी पुण्यभूमि तो कहीं सुदूर अरब या फिलिस्तीन में है—हालाँकि इन लोगों में भारतवर्ष को ही पितृभूमि मानने के कारण काफी हद तक हिन्दुओं की संस्कृति के चिन्ह हैं। उनकी भाषा, रीति-रिवाज, इतिहास, नियम आदि हिन्दुओं के से हैं, लेकिन, फिर भी वे हिंदू नहीं। उनके विचार, आदर्श, धर्म, इतिहास, देव-पुरुष और वीर योद्धा किसी दूसरे ही देश की मिट्टी की उपज हैं। उनके नाम और दृष्टिकोण पराए से लगते हैं। उनका प्रेम बंटा हुआ है, और ऐसा होना है भी स्वाभाविक। यदि स्पष्ट रूप से उनके विचारों का अध्ययन किया जाए तो पता चलेगा कि वे पुण्य भूमि को अधिक मान्य समझते हैं। यूँ भी पुण्यभू पितृभूमि की अपेक्षा अधिक पूज्य होती ही है, हमें इसमें जरा भी एतराज नहीं और न ही हम इसके लिये उनको दोष दे सकते हैं। हम तो केवल हिंदुत्व के तत्वों का विश्लेषण

करते हुए इस परिणाम पर पहुंचे हैं कि बोहरा जाति के लोग और ऐसे अन्य ईसाई और मुसलमान जिन में हिन्दुत्व के प्रायः सभी आवश्यक गुण हैं, केवल इसलिए हिन्दू कहलाए जाने के अधिकारी नहीं क्योंकि वे हिंदुस्तान को पुण्य-भूमि नहीं मानते।

हिन्दू बनने के लिये आपको किसी नये सिद्धांत के अनुयायी बनने की आवश्यकता नहीं। आपसे आत्मा और परमात्मा के सम्बन्ध के विषय में अपने विचारों को बदलने को नहीं कहा जाता। हमारी तो दृढ धारणा है कि हिंदू विचारवाद में—हम इस समय किसी धर्म विशेष की बात नहीं कर रहे—अब कोई भी विषय ऐसा नहीं रहा जिस पर कोई नया प्रकाश डाला जासके वह अपने में सर्वथा सम्पूर्ण है, उसमें परिवर्द्धन करने की गुंजायश रही ही नहीं। आप आस्तिक हों या नास्तिक, एक ईश्वरवादी हों या प्रकृतिवादी अथवा अनीश्वर वादी—आप हिन्दू धर्म में आयें, यहाँ आपके लिए पर्याप्त क्षेत्र है। आप कोई भी क्यों न हों, यहां आपको अपने पूर्णतम विकास और पूर्ण संतोष का साधन मिलेगा। आप इस महामन्दिर की शरण में आएं जिस की नींव किसी व्यक्तिगत आधार पर नहीं अपितु सत्य के विशाल और गम्भीर आधार पर रखी गई है। आप अपनी ज्ञान-पिपासा बुझाने के लिए क्यों छोटे २ कुओं की खोज में मारे २ फिर रहे हैं—पतित-पावन गंगा का निर्मल जल तो आपके पास ही बह रहा है। क्या आपकी नस २ में बह रहा हमारे और आप के एक ही पूर्वजों का खून आपको यह नहीं पुकार-पुकार कर बतलाता कि

आप कौन थे और क्या बने बैठे हैं ? क्या आपके दिल में रह-रह कर हूक नहीं उठती, जब आप यह जानते हैं कि कैसे विधर्मियों की तलवार की नोंक से आप हम से जुदा किए गए थे। भाई ! हमारे दरवाज़े आपके स्वागत के लिये खुले पड़े हैं। हम बांहें फैलाए आप की इन्तज़ार कर रहे हैं, आप अपने भाईयों और बहिनों से कब तक जुदा रह सकेंगे ? हिन्दुधर्म के अतिरिक्त और कहां आप को इतनी धार्मिक स्वतन्त्रता मिल सकती है—यहां तो महाकाल के मन्दिर की चौखट पर चार्वाक को नास्तिकता का प्रचार करने तक की इजाजत मिल गई थी। हिन्दुधर्म में पूर्ण धार्मिक स्वतन्त्रता है; यहां आप पर धार्मिक विश्वास ठूँसे नहीं जाते, आप उपासना जैसे चाहे कर सकते हैं। यहां संतालों से लेकर साधुओं तक को धार्मिक विचारों के विषय में पूरी आजादी है। कहा भी है-

यन्दिहास्ति न सर्वत्र, यन्नेहास्ति न कुत्रचित्।

अर्थात् हिन्दुधर्म में जो कुछ है, वह अन्यत्र आपको कहीं न मिलेगा। इसमें सभी कुछ है और जो कुछ इसमें नहीं है वह तो संसार भर में भी न मिल सकेगा।

जातीय, राष्ट्रीय, पैतृक और सांस्कृतिक रूप में हिन्दुत्व के जो भी आवश्यक गुण हैं, वे सब आप में विद्यमान हैं, फिर आप हिन्दु धर्म की शरण में क्यों नहीं आते। आप अपना पूर्ण प्रेम भारतमाता के चरणों में उंडेल दें और भारतवर्ष को न केवल पितृभूमि परन्तु पुण्यभूमि भी मानें, तब हम सब आपको हिन्दु राष्ट्र में सम्मिलित कर आपका हृदय से स्वागत करेंगे।

बोहरे, खोजे और अन्य ईसाइयों और मुसलमानों के लिए, जो कभी हमारे ही भाई-बन्धु थे, यह एक स्वर्णीय अवसर है। हम इन्हें प्रेमपूर्वक बुलावा देते हैं कि वे हमसे-अपने भाइयों से मिल जावें। परन्तु वे तभी हिन्दू हो सकेंगे जब वे अपने हृदयो को भी बदल लें। हम तो हिन्दुत्व के मूल तत्वों का विश्लेषण कर रहे हैं और यह सर्वथा अनुचित होगा यदि हम किसी जाति विशेष के हित के लिए हिन्दुत्व शब्द के अर्थ में, खींचातानी करने की चेष्टा करें।

अब संक्षेप में हम फिर एक बार अपने परिणामों को दोहराते हैं। हिन्दू वही है जो सिन्धु नदी से सिंधु सागर तक फैले हुए प्रदेश को पितृभूमि मानता हो। जिसकी नसो में इस जाति के पूर्वजों का खून बहता हो, जिन्हें हम वैदिक काल के सप्तसिंधु कहते हैं, और वे ही जो बाद में समय के परिवर्तन के साथ, बहुत कुछ घट-बढ़ कर हिंदू जाति के नाम से प्रसिद्ध हो गए। हिन्दू वही है जो इस जाति की संस्कृति को पैतृक सम्पत्ति के रूप में अपने पूर्वजों से प्राप्त करके हृदय से अपनाता है। और हिंदु संस्कृति वही है जो मुख्यतः हमारी राष्ट्र भाषा संस्कृत मे वर्णित है और हमारे राष्ट्र के इतिहास, साहित्य, कला, स्मृति, न्याय-विधान, रस्मो-रिवाज मेले, उत्सवों आदि में जिसका स्पष्ट रूप से प्रतिनिधित्व किया गया है। हिंदू वही हो सकता है जो इस सिंधुस्थान को अपनी पुण्यभूमि अर्थात अपने पूज्य-ऋषि-मुनियों, पेगम्बरों, गुरु-जनों, देव-पुरुषो की पुनीत जन्म भूमि

मानता हो। एक राष्ट्र एक जाति और एक-सी संस्कृति—हिंदुत्व के यही तीन तत्व हैं। इन तीनों तत्वों का भाव इतना कह देने से भी आ जाता है कि हिंदू वही है जो सिंधुस्थान को न केवल पितृभूमि परन्तु पुण्यभूमि भी समझता हो। 'पितृभूमि' के उच्चारण मात्र से हिंदुत्व के दो मूल तत्व 'राष्ट्र' और 'जाति' स्वयमेव ही अभिप्रेत हो जाते हैं। हिंदुत्व के तीसरे मूल तत्व 'संस्कृति' का पूरा भाव 'पुण्यभूमि' शब्द में आ जाता है। संस्कार ही संस्कृति का आधार है और संस्कारों से ही सिंधुस्थान पुण्यभूमि बना है।

अतः जो भारतवर्ष को पितृभूमि और पुण्यभूमि मानता है, वह पूर्ण हिंदू है। कहा भी है:—

आसिन्धु सिन्धुपर्यन्ता यस्य भारतभूमिका।
पितृभूः पुण्यभूश्चैव स वै हिन्दुरिति स्मृतः ॥

\+ +

———

७

पिछले अध्यायों में हम हिंदुत्व का लक्षण करने के बाद ऐसे परिणाम पर पहुँच चुके हैं जो हिंदुत्व की विशेषताओं अथवा उसके प्रमुख अंगों पर प्रकाश डालता है। अब हम उस लक्षण की विशेष परीक्षा करना चाहते हैं। उसके लिये हमें कुछ नमूने लेने होंगे। उन नमूनों पर यह लक्षण पूरा घटना चाहिये। उन्हीं नमूनों के लिये 'हिंदुत्व' शब्द की व्याख्या की आवश्यकता पड़ी थी। यदि उन पर यह परिभाषा पूरी घटेगी और हिंदू जाति के प्रत्येक अंग का उस में उचित समावेश हो जायगा तो हमें इस लक्षण को निर्दोष मानना होगा। हम देख चुके हैं कि इस में अतिव्याप्ति का दोष नहीं है। अर्थात् यह 'अहिन्दू' जातियों पर घटित नहीं होता अब हमें यह देखना है कि इसमें अव्याप्ति दोष तो नहीं। अभिप्राय यह कि इसमें हिन्दू जाति के सब समुदायों का समावेश हो जाता

है या नहीं। कहीं इस लक्षण के स्वीकार करने पर हिन्दु जाति के कुछ भाग हिन्दुत्व से बाहर तो नहीं रह जाते।

थोड़ा-सा दृष्टिपात भी यह प्रगट कर देता है कि यह परिभाषा हिन्दुओं की भौगोलिक सीमा के अनुकूल है। इस परिभाषा का अधार भौगोलिक ही है। 'आसिन्धु सिन्धुपर्यन्त' सिन्धु से सिन्धु पर्यन्त की परिभाषा से सिन्धु नदी से समुद्र पर्यन्त सभी हिन्दुओं का समावेश हो जाता है। किन्तु सिन्धु नदी के पश्चिम ओर बसने वाले हिन्दू हिन्दुत्व की परिधि से बाहिर रह जाते हैं। वे हज़ारों वर्षों से सिन्धी कहलाते हैं और सिन्धु देश की ही सन्तान हैं। हमें सिन्धु नदी से उसके दोनों तटों का समावेश करना चाहिए। इस प्रकार सिन्धु नदी के निकटवर्त्ती पश्चिमी तट की भी हिन्दुस्थान में ही गिन्ती होगी। पश्चिमी तट के हिन्दू हज़ारों वर्षों से हिन्दुस्थान को ही अपनी 'पितृभू, व 'पुण्यभू' मानते रहे हैं। उन्होंने कभी भी अपने को किसी और मातृ भूमि की सन्तान नहीं कहा है। हमारे तीर्थ स्थानों को ही वे अपना तीर्थ स्थान मानते आये हैं। हमारे बनारस कैलाश और गंगोत्री उनके भी बनारस, कैलाश और गंगोत्री हैं। वैदिक काल से आज तक वे भारतवर्ष के ही अंग रहे हैं। रामायण में 'सिन्धुशिव सौवीर' नाम से उनको याद किया गया है। महाभारत में भी हम उन्हें विशाल हिन्दू साम्राज्य के ही अंग रूप मे पाते हैं। वे हमारे ही राष्ट्र, जाति और संस्कृति के हैं। इसलिए वे हिंदू ही हैं और हिंदुत्व की परिभाषा में आते हैं।

यदि सिंधु नदी के दोनों तटों पर रहने के कारण ही सिन्धु-स्थानवासी कहलाने की युक्ति को न माना जाय तो भी केवल सिंधु नदी के पार रहने के कारण ही कोई हिन्दुत्व नहीं खो सकता। सैंकड़ों हिंदू ऐसे हैं जो हिन्दुस्थान के बाहर दुनिया के अन्य देशों में रहते हैं। समय आयगा जब हिन्दू उपनिवेशों में रहने वाले हिंदू—जो अब भी उन उपनिवेशों में वाणिज्य—व्यापार—संख्या—योग्यता आदि गुणों में प्रथम हैं—उन उपनिवेशों के प्रमुख निवासी बन कर वहां भी हिंदू राष्ट्र कायम कर लें। प्रश्न यह है कि हिंदुस्थान के बाहिर रहना ही क्या एक आदमी को 'अहिंदू' बना सकता है ? हरगिज नहीं। क्यूंकि हिंदुत्व का प्रथम लक्षण यह नहीं है कि हिंदू वही है जो हिंदूस्थान के बाहिर न रहता हो बल्कि यह है कि वह चाहे हिंदुस्थान मे चाहे दुनियां के किसी भी हिस्से में रहे, केवल हिंदुस्थान को अपनी मातृभूमि माने। इस लक्षण के अनुसार हिंदू अन्य उपनिवेशों में रहते हुए भी हिंदुत्व की उपाधि से वंचित नहीं होता। यह लक्षण हिंदुओं के विस्तार मे बाधक नहीं है। हिंदुत्व के लिए यह गौरव की बात है कि हिंदू अन्य उपनिवेशों में भी जाएं और वहां हिंदू संस्कृति का प्रचार कर के 'महाभारत' (विशाल-भारत) बनाएं और हिंदू धर्म के विस्तार से मानव जाति का उत्थान करें। संसार के एक छोर से दूसरे छोर तक उनको प्रवास करना चाहिए और हिंदू धर्म की अच्छाइयों का प्रचार करके मनुष्य जाति की भलाई करनी चाहिए। उन्हें अपनी श्रेष्ठताओं का चारों दिशाओं मे प्रचार ही

नहीं करना चाहिए बल्कि उन देशों की उत्कृष्टताओं से भी भारत को समृद्ध बनाना चाहिए। हिंदुत्व अपने हिमालयन दूतों के पंख नहीं काटता बल्कि उन्हें उड़ने को प्रोत्साहित करता है। जब तक कोई हिंदू अपनी मातृभूमि हिंदुस्थान को अपने पूर्व पुरुषों की जन्मभूमि मान कर पूजता है और जब तक उसके रक्त में हिंदू संस्कृति का अभिमान मौजूद है तब तक उसके विस्तार में कोई रुकावट नहीं है। हिंदुत्व कोई भौगोलिक सीमा नहीं है उसका विस्तार पृथ्वी भर में होना चाहिए। उसका अधिकार-क्षेत्र सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड है।

हिंदुत्व का जो लक्षण हम ने किया है वह जातीय दृष्टिकोण से सर्वथा निर्दोष है। जाति-निर्माण के लिये आवश्यक सब अंगों का हिंदुत्व में समावेश है। जिस तरह इङ्गलैण्ड में आयवेरियन, केल्ट, एंगल, सेक्सन, डेन और नार्मन जातियों आदि मे बहुत भिन्नता होते हुए और आन्तर्जातीय विवाहों में रुकावट होते हुए भी अब एक ही इंगलिश जाति में मिल गयी हैं, उसी तरह हिंदुस्थान की प्राचीन जातियां आर्य कोलेडियन द्रविडियन तथा अन्य आदिम जातियां मिलकर एक ही जाति के रूप में आ चुकी हैं। उनका सम्मिश्रण इतना पूर्ण हुआ है कि अब उनका पृथक्करण संभव ही नहीं है। पिछले अध्यायों मे हम ने बहुत विस्तार से उनके एकीकरण पर प्रकाश डाला था और बतलाया था कि हमारे स्मृति-ग्रन्थो में स्वीकृत अनुलोम व प्रतिलोम विवाह-प्रणालियाँ इस बात की साक्षी हैं कि उस समय विभिन्न जातियों

के परस्पर विवाह-संबंधों की रीति अच्छी तरह प्रचलित थी, एक जाति का रक्त दूसरी जाति से मिल रहा था और परिणामतः सब जातियां अपने भेदों को भुला कर एक हिंदु जाति में शामिल हो रही थीं। कुदरत भी इस प्रक्रिया में पूरी सहायता दे रही थी। एक जाति के पुरुष का दूसरी जाति की कन्या से प्रेम सम्बंध होने पर उन्हे विवाह करने को कोई रोक नहीं सकता था। समाज में उस विवाह को बहुत आदर की दृष्टि से अवश्य नहीं देखा जाता था, किंतु प्रेमियों को समाज के आदर की परवाह कम होती है। भीमसेन की हिडिंबा से प्रीति और उनका विवाह इतिहास की वस्तु है। ब्राह्मण कन्या व्याधकर्मा की माता का एक व्याध युवक से प्रेम और विवाह होने की घटना का उल्लेख हम पहिले भी कर चुके हैं। इतिहास मे ऐसे अंतर्जातीय विवाहों के सैकड़ों उदाहरण हैं। इस समय इन विभिन्न जातियों का सम्मिश्रण इतना पूर्ण हो चुका है कि इन जातियों की संतानों को एक दूसरे से जुदा करना असंभव है! किसी भी प्रकार की शारीरिक व मानसिक परीक्षा उनके भेद को जानने में कामयाब नहीं हो सकती। यह सम्मिश्रण बहुत स्वाभाविक और सहज होने के कारण बहुत स्वास्थ्यकार हुआ है। इन अंतर्जातीय विवाहों का संतानों ने आर्य कोलेरियन-द्राविड़ियन आदि जातियों का विस्तार न करके केवल हिंदू जाति की वृद्धि की। संकीर्ण बिरादरी के खयालात छूटकर जातीयता के विचारों ने पुष्टि पायी। हिंदुस्थान की सभी जातियां एक ही 'आसिंधु सिंधुपर्यन्ता' भूमि की वासी होने के कारण एक

ही जाति में सङ्गठित हो गयीं। संताल-कोली, भील, पंचम, नामशूद्र सभी जातियां हिंदुओं की ही जातियां हैं। हिंदुस्थान उनकी भी उतनी ही प्रिय और पवित्र मातृ-भूमि है जितनी आर्यों की। इन जातियों के रक्त में भी हिंदू रक्त प्रवाहित होता है। इनकी संस्कृति भी हिंदू संस्कृति है। उन मे से बहुत से हिंदु समुदाय की सभी संकीर्ण रीतियों के अनुयायी नहीं हैं, वे अभी तक अपने ही देवी देवताओं की पूजा करते हैं, किंतु वे देवी देवता भी इसी भूमि के हैं और इस कारण वे हिंदुस्थान को अपने देवी देवताओं की भूमि मानने के कारण पितृभू और पुण्यभू दोनों मानते हैं।

'हिंदुत्व' के संस्कृति-सम्बंधी पहलू पर भी कोई भ्रम होता अगर 'हिंदुत्व' और 'हिंदुवाद' की परिभाषाओं में एक दूसरे से इतना सादृश्य न होता। हमने पहले अध्यायों में इन दोनों परिभाषाओं के बीच सादृश्य और भेद की पूर्ण व्याख्या कर दी है और दोनों एक दूसरे से कितनी भिन्न हैं यह खोलकर रख दिया है। हमने यह भी सिद्ध कर दिया है कि 'हिंदुवाद" केवल सनातन धर्म नहीं है। हिंदुत्व और हिंदु धर्म भिन्न चीजें हैं तथा हिंदुधर्म और हिंदुवाद भी अलहदा है। हिंदुत्व को हिंदु धर्म मानना और दोनों का सनातनी मत से एकीकरण कर देना भारी भूल है। यही भूल सनातनियों के अतिरिक्त हिंदुओं को हिंदू कहलाने मे बाधक हो रही है। अगर सनातनी हिंदू इस भूल का भण्डाफोड़ न करके यदि इस भूल के परिणाम में अपने

हिंदुत्व को तिलांजली देने लगें तो यह भयंकर आत्मघात होगा। हमें इस भूल को मिटाने की कोशिश करनी चाहिए। हमें आशा है कि हिंदुत्व की हमारी व्याख्या इस भूल और भूल के कारण पैदा हुई ग़लतफ़हमियों को दूर करने में बहुत सहायक होगी। हमारी व्याख्या हिंदु समाज के प्रत्येक विचारशील व्यक्ति को मान्य है। हमने अभी तक सर्वसाधारण को दृष्टि में रखकर ही अपनी व्याख्या को युक्तियुक्त सिद्ध किया है। अब हम कुछ निश्चित मत ले कर पाठकों के सम्मुख हिंदुत्व को कसौटी पर रखते हैं। हम सिख मत का उदाहरण लेते हैं। सिखों की मातृभूमि (आसिंधु सिंधु-पर्यंता भारतभूमिका) सिंधुस्थान है, इससे कोई इन्कार नहीं कर सकता। सिखों के पूर्वज सिंधुस्थान-वासी थे और सिंधु स्थान को पूज्य मानते थे इसमें भी कोई आपत्ति नहीं करेगा। उनकी नसों में भी उतना ही हिंदू-रक्त है जितना मद्रास व बंगाल के हिन्दुओं में है। बल्कि सिखों का रक्त अन्य प्रांतीय हिंदुओं से भी अधिक विशुद्ध है। सिख उस भूमि भाग पर रहते हैं जहां हमारे पूर्वजों ने सर्व प्रथम हिंदू राष्ट्र की कल्पना की थी। आर्यों का प्रथम निवास सिंधु नदी के तट से पंजाब में ही हुआ था। उनकी नसों में अन्य जाति—उपजातियों के सम्पर्क से पूर्व का विशुद्ध हिंदू-रक्त प्रवाहित हो रहा है। हिंदू संस्कृति के निर्माण में सिखों का भी हाथ है, अतः हिंदू संस्कृति के वे किसी भी और हिंदू से कम दावेदार नहीं। हिंदू संस्कृति पर उनका पूरा अधिकार है। सरस्वती नदी पंजाब मे ही है। इसी सरस्वती को बाद में

संस्कृति व साहित्य को देवी के नाम से याद किया जाने लगा। वेदों में इसी की महिमा गाई गयी है।

'अंबितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति' वेद उसी तरह सिखों के लिये पूज्य है जिस तरह हमारे। वेदों को ईश्वरीय ग्रंथ भले ही न मानें किंतु हिंदू होने के नाते तथा अपने पूर्वज की सब से पहली स्मृति होने के कारण वेदों पर सिखों की आस्था कम नहीं। वेद मनुष्य जाति के अज्ञान-अंधकार को दूर करके प्रकाश देने का सर्व प्रथम और सब से ऊंचा प्रयत्न था जिस अज्ञान ने मनुष्य की आत्मा पर काबू पाया हुआ था उसे दूर करके ज्ञान की किरणों को मनुष्य की अंधकारवृत्त आत्मा तक पहुंचाने मे वेद ही मनुष्य का प्रथम प्रयत्न है। सिखों का पूर्व इतिहास भी वेदों से ही प्रारम्भ होता है वह भी अयोध्या के राज महलों से होता हुआ लंका के समरस्थल को देखता हुआ और 'लहू'—जिसने लाहौर की स्थापना की थी—के जीवन काल तक हिंदू मात्र के इतिहास के साथ चलता है। सिद्धार्थ का कपिल वस्तु को त्याग कर ज्ञान की तलाश में घूमने की घटना भी सिखों के इतिहास से बाहिर नहीं है। बुद्ध कालीन 'हिंदू सिखों के पूर्वज थे। हिंदू-साम्राज्य के अंतिम सम्राट् पृथ्वी राज की पराजय पर सिखों को भी उतना ही शोक होता हैं जितना अन्य हिंदुओं को। आज भी हज़ारों लाखों उदासी, निर्मल, गहन गंभीर और सिन्धी-सिख संस्कृत को अपनी मातृ भाषा मानते हैं। अन्य सिख भी इसे गुरुमुखी की मां तो मानते ही हैं। गुरुमुखी अभी तक संस्कृत

मां का दूध पीकर बड़ी हो रही है। 'आसिंधु सिंधु पर्यन्ता भूमिः' सिखों के लिए न केवल पितृ भूः बल्कि 'पुण्य भू' भी है। गुरु नानक, गुरु गोविंद श्री बंदा वैरागी और गुरुरामसिंह का जन्म हिंदुस्तान में ही हुआ था। अमृतसर और मुक्तसर जो सिखों के तीर्थ हैं हिंदुस्थान के ही मिट्टी-जल से बने हैं। सच तो यह है कि हिंदू होने का सब से मज़बूत दावा सिख ही कर सकते हैं। वे ही हमारे पूर्वजों की सर्व-प्रथम संतान हैं। उनमें विशुद्ध आर्य रक्त है। सिक्खों और हिंदुओं की राष्ट्रीयता एक ही है। दोनों में कोई भेद नहीं। आज का सिख कल का हिंदू है और आज का हिंदू कल का सिख हो सकता है। रीति-रसमों का कुछ भेद, वेष-भूषा की कुछ तब्दीली किसी जाति की आधार-भूत एकता को भिन्न नहीं कर सकती। दोनों का रक्त-बीज एक है। दोनों का इतिहास एक है। ये बाहिरी परिवर्तन इतिहास को नहीं बदल सकते।

लाखों सिख आज भी हिंदुत्व की चेतना को भूले नहीं हैं। सहजधारी, उदासी, निर्मल, गहनगम्भीर तथा सिंधी सिख आज भी हिंदू होने का गर्व करते हैं। सिखों के गुरु स्वयं हिंदू थे। उन्होंने हिंदू धर्म की रक्षा की थी। तब आज के सिख हिंदू कहलाने में सकोच अनुभव क्योंकर करें? गुरुग्रंथ का पाठ केवल सिख ही नहीं करते, सनातनी भी करते हैं। दोनों के त्योहार एक सरीखे हैं। खालसा सम्प्रदाय के सिख भी हिंदुओं में रहते हैं और हिंदुओं की तरह ही रहते हैं। उनमे हिंदुत्व

की चेतना अभी तक जागृत है। सिखों और सनातनियों में अंत-विवाह भी होते हैं। सिखों को ग़ैर हिंदू कहना भारी अन्याय है। स्वयं सिख इस अपमान को सहन नहीं करेंगे।

इस समय सिख भाइयों के कुछ नेता अपनी गणना हिंदुओं से अलहदा करवाने को जो आग्रह कर रहे हैं वह कभी न होता अगर हिंदूवाद और सनातन मत के पर्यायवाची व एकार्थक होने का भ्रम न फैलता। यही भ्रम हमारी हिंदू जातियों के ऐक्य में बहुत बाधक हो रहा है। इस भ्रम के दूर होने की बहुत आवश्यकता है। हमने यह सिद्ध करने की कोशिश की है कि हिंदुत्व का निर्णय किसी धार्मिक व आध्यात्मिक कसौटी पर नहीं हो सकता। हम फिर उसी बात को दोहराते हुए कहना चाहते हैं कि सिखों को सनातनधर्म के सब मंतव्यों को, जिन्हें वे अंधविश्वास कहते हैं, अमान्य कहने का पूरा अधिकार है। यहाँ तक कि वे वेदों को आप्त मानने से भी इन्कार कर सकते हैं। तब भी वे हिंदू रहेंगे। उनकी गणना सनातनधर्मियों में नहीं होगी—किन्तु हिंदुत्व की परिधि से बाहिर जाने की उन्हें कोई आवश्यकता नहीं है। सिख हिंदू हैं—क्योंकि हिंदुत्व के सब लक्षण उन पर घटते हैं। उनका धर्म सिख धर्म है—उसी तरह जिस तरह जैनियों का जैन, वैष्णवों का वैष्णव और लिंगायतों का लिंगायत, किन्तु राष्ट्र जाति व संस्कृति के नाते हम सब एक हैं—अभिन्न हैं—हिंदू हैं—आज से नहीं असंख्य वर्षों से।

हमारी जातीयता को व्यक्त करने वाली और कोई परिभाषा नहीं। 'भारतीय' शब्द भी हमारे उपयुक्त नहीं, वह केवल हमारी एकदेशीयता को प्रगट करता है एक-जातीयता को नहीं। केवल स्वदेशीय होने से ही कोई भी भारतीय तो हो सकता हैं हिंदू नहीं हो सकता। हिंदू शब्द हमारी जातीयता का भी द्योतक हैं।

सिख भाईयों का, अपनी गणना हिंदुओं से पृथक् कराने का एक मुख्य कारण राजनैमिक भी है। हम यहां विशेष प्रतिनिधित्व की चुनाव प्रणाली के गुण अवगुण की विवेचना नहीं करेंगे। सिखों की अपने विशेषाधिकारों को सुरक्षित करने की उत्सुकता बहुत स्वभाविक है। यदि मुसलमानों को विशेष प्रतिनिधित्व का अधिकार मिल सकता है तो भारत की अन्य अल्पसंख्यक जातियों को भी वही विशेषता मिलनी चाहिये। हम सिखों की इस मांग का समर्थन करते हैं। किन्तु इसके पक्ष में वे जो युक्ति देते हैं उससे सहमत नहीं। उन्हे इसके लिये अपने को ग़ैर हिंदू बतलाने की आवश्यकता नहीं। वे हिन्दू रहते हुए भी अपनी कौम के लिये विशेष प्रतिनिधित्व उसी तरह ले सकते थे जिस तरह मद्रास के ब्राह्मणों ने लिया। सिख कौम की मुसलमानों से कम मुख्यता नहीं होनी चाहिये। हम हिंदुओं के लिए तो वे भारत की सब ग़ैर कौमों से अधिक मुख्य हैं। सिख-जैन लिंगायत-और अब्राह्मणों को भी विशेष सुरक्षाओं के लिये आग्रह करने का अधिकार है— यदि वे वस्तुत अनुभव करते हैं कि उनके धार्मिक मन्तव्यों को सुरक्षा की ज़रूरत है। हिंदू जाति के इन भिन्न २ अंगों के विकास

के साथ हिंदू जाति का ह्रास नहीं होता, विकास ही होता है। प्राचीन समय में हमारी राजसभाओं में चातुर्वर्ण्य को भी विशेष प्रतिनिधित्व प्राप्त था। उस विशेष-प्रतिनिधित्व के कारण वे क्यां हिंदुत्व से अलहदा नहीं हुए। सिखों को भी, विशेष प्रतिनिधित्व की प्राप्ति के लिये हिंदूत्व का बाना उतारने की आवश्यकता नहीं है। वे धर्म की दृष्टि से सिख हैं किंतु राष्ट्र, जाति व संकृति के नाते से वे हिंदू ही हैं।

हम यह कल्पना भी नहीं कर सकते कि जिनके पूर्वजों ने "हिंदू" कहलाने की कीमत अपने बलिदान से दी, जो केवल हिंदू होने के अपराध में हंसते २ सूली पर चढ़ गये—

धर्म हेतु शाका जिन किया।
शिर दिया शिरह न दिया॥

वही आज अपने हिंदुत्व को कौड़ी की कीमत पर बेचने को तैय्यार होंगे। ईश्वर ऐसा दिन न दिखाये। हमारे अल्पसंख्यक मतों को याद रखना चाहिए कि यदि वे 'एकता में शक्ति है' कहावत को मानते हैं तो 'हिंदुत्व' में एकता की बड़ी संभावनायें हैं। हिंदुत्व शब्द हमारे ऐक्य को बहुत दृढ़ कर सकता है। अल्पसंख्यकों का स्वार्थ हिंदुओं से अलहदा रहने में नहीं बल्कि हिंदुओं में ही रहने से सिद्ध होगा। हिंदुओं की शक्ति में ही उनकी शक्ति है। कभी कोई विदेशी हिंदुओं पर हमला करेगा तो उसकी सबसे पहली चोट उन्हीं पर पड़ेगी। वे उस समय अपने को ग़ैर हिंदू कह कर सुरक्षित नहीं रह सकते।

हिन्दुओं को कमजोर बनाकर शक्ति-शाली नहीं होंगे बल्कि हिन्दुओं को शक्ति सम्पन्न बना कर ही उनकी शक्ति बढ़ेगी। इतिहास साक्षी है कि जब किसी नेता के नीचे हिन्दू एक होकर रहे हैं उनका गौरव चोटी पर पहुंच गया है। श्री शिवाजी, राजा रणजीतसिंह, श्री रामचन्द्र, अशोक और अमोघवर्ष सभी हिंदु राजाओं ने हिंदुमात्र को गौरवान्वित किया है। इनकी छत्रछाया में हिंदू साम्राज्य का यश चार दिशाओं मे फैल गया था। उस विश्व व्यापी यश का श्रेय हिंदुओं की सभी कौमों को मिला है। भविष्य मे भी हिदुओं की विजय से सभी हिंदू जातियों को गौरव मिलेगा। अतः हम अल्पसंख्यक जातियों से अनुरोध करेंगे कि वे क्षणिक लाभ के लोभ मे न पड़ें। उन्हें इतिहास का सच्चा अध्ययन करना चाहिये, भ्रम मे नहीं पड़ना चाहिये!

मेरी एक बार एक ग्रन्थी से भेंट हुई थी। उसे एक डाका के अपराध मे सज़ा मिली थी। उसने एक ब्राह्मण महाजन के घर डाका डाला था और ब्राह्मण को क़तल कर दिया था। उसी ने मुझ से कहा था कि 'सिख हिंदू नहीं हैं'। विशेषकर ब्राह्मण का वध करना सिख धर्म मे कोई गुनाह नहीं है, क्योंकि गुरु गोविन्दसिंह के पुत्रो को एक ब्राह्मण रसोइये ने ही धोखे से पकड़वाया था।' सौभाग्य से उस समय वहाँ एक और सच्चा और विख्यात ग्रन्थी मौजूद था। उसने उसकी बातों का खण्डन करते हुए मतिदास आदि के अनेक उदाहरण दिए जिन्होंने गुरुओं की प्राणरक्षा में अपनी कुर्बानी दी थी। ऐसे व्यक्तिगत विश्वासघात

जातियों के सम्बन्धों का निश्चय नहीं कर सकते। क्या शिवाजी को उनके ही सगे रिश्तेदारों ने और उनके ही पौत्र ने धोखा नहीं दिया? क्या उन्हें भी धोखा देने वाला 'पिसाल' हिंदू नहीं था? किंतु क्या उस एक विश्वासघाती के अपराध से सारी हिंदू कौम को सज़ा देनी चाहिए? क्या शिवाजी ने उसका बदला हिंदू जाति से लिया? क्या उन्होंने हिंदू-धर्म छोड़ दिया? स्वयं सिखों से ही सिखों को धोखा खाना पड़ा है। क्या बन्दा बैरागी को सिखों ने धोखा नहीं दिया। अन्तिम खालसा युद्ध में भी, जो अंग्रेज़ों से लड़ा गया था, सिखों से सिखों को धोखा मिला था। स्वयं गुरु गोविंदसिंह कुछ विश्वासघाती सिखों का शिकार बन गये थे। इन्हीं की कायरता और धोखे से गुरु गोविंदसिंह को पराजय का सामना करना पड़ा था और उसी के बाद उस नराधम ब्राह्मण ने उन्हें धोखा देकर उनके दो पुत्रों को पकड़वा दिया था। कुछ हिंदुओं के अपराध के कारण यदि सिख हिंदुत्व को छोड़ दें तो क्या सिखों के अपराध के कारण वे अपना धर्म भी छोड़ देंगे?

हिंदुओं का अल्पमत या बहुमत आसमान से नहीं टपका था, उसका विकास हुआ है। मूल में उनके हिंदु जाति और हिन्दू संस्कृति ही है। वे मत हिंदुओं के ही अल्पमत या बहुमत हैं। हिंदुओं से अलहदा उनकी कोई हस्ती मुमकिन ही नहीं। उन भिन्न २ मतों में हिंदुत्व बीजरूप में विद्यमान ही है। हम बकरी के मेमने को कच्छ और कृपाण पहना कर किसी भी सूरत

से शेर नहीं बना सकते। शेर बनने के लिए शेर का बीज चाहिये। गुरु ने जब योद्धाओं का संगठन किया तो हिंदुओं मे से ही कुछ शूरवीरों को चुनकर योद्धा बनाया। उनमें अगर शौर्य का बीज न होता तो वे शूरवीर न बनते। वह बीज उनके रक्त में परम्परा से आया है। उसका श्रेय हिन्दूरक्त को ही मिलना चाहिये। शेर का बच्चा ही शेर बनता है। फूल का बीज ही फूल को बनाता है। फूल यह नहीं कह सकता कि उसकी खुशबू, खूबसूरती और मुस्कराहट के साथ वह खुद आगया है। उस को उसके बीज और पौधे की जड़ के बिना हम पा ही नहीं सकते। इसी तरह हम गुरु गोविंदसिंह के बहादुर सिखों का ज़िक्र करते हैं तो हिन्दुओं की बहादरी का वर्णन स्वयं हो जाता है। गुरु के चेलों का बीज तो हिंदू ही था। वह सिख जिन्होंने धर्म की रक्षा के लिये शीश कटा दिये सिख बनने से पूर्व हिंदू ही थे। हिंदू रक्त से ही उनका जन्म हुआ था, अब भी वे हिंदू ही हैं। जब तक सिखों की आस्था हिन्दुस्तान की भूमि पर रहेगी, वे इसे ही अपनी मातृभूमि के अतिरिक्त पुण्यभू: भी समझते रहेंगे तबतक सिखों को हिन्दू कहलाने का अधिकार रहेगा। और जब तक वे इस भूमि को पुण्यभू: कहते रहेंगे तब तक वे सच्चे सिख रहेंगे। अत: उनका हिन्दुत्व और सिख धर्म साथ ही साथ रहेगा और यदि वे अपने धर्म पर अटल न रहे तो साथ टूटेगा ही। सच्चा सिख सच्चा हिन्दू हुए बिना नहीं रह सकता।

जो युक्ति सिखों को हिन्दू कहलाने का अधिकार देती है वहीं

अन्यमतों को भी हिंदू कहलाने का सामर्थ्य देती है । देवसमाजी अनीश्वर वादी हैं, किन्तु हिन्दुत्व का ईश्वरवाद से कोई सम्बंध नहीं । देवसमाज जब तक इस देश को 'पितृ भूः' और 'पुण्य भूः' मानेंगे तब तक वे हमारी दृष्टि में हिन्दू रहेगे ।

हमें अभी तक उपर्युक्त लक्षणों मे एक ही अपवाद नजर आता है । वह है सिस्टर निवेदता के सम्बध मे । हमारी इन देशभक्ती ने हिन्दुस्थान को ('पितृ भूः') अपनो मातृ भूमि मान लिया है । वह इसे उसी तरह प्रेम करती थी जिस तरह हम करते हैं । यदि हम स्वतंत्र राष्ट्र होते तो उसे नागरिकता के सम्पूर्ण अधिकारों से शोभित करते । हिन्दुत्व का प्रथम लक्षण उस पर पूरा चरितार्थ होता था । हिन्दुरक्त रखने की दूसरी शर्त्त उसके साथ कभी पूरी नहीं हो सकतीं थी । हिन्दु पुरुष से विवाह करने के कारण और पति-पत्नि को हमारे धर्म शास्त्रों मे एक मन, एक प्राण मानने के कारण यह शर्त्त कुछ अंशों में पूरी हो जाती थी । हिन्दुत्व की तीसरी शर्त्त उस पर पूरी घटती थी । उसने हिन्दू संस्कृति को अपना लिया था । वह इसे 'पितृभूः' ही नहीं 'पुण्यभूः' भी मानती थी । इन सब शर्तों के इलावा सबसे बड़ी बात—जोकि वस्तुतः सब शर्तों का निचोड़ है—यह थी कि वह हृदय से अपने को हिन्दू मान चुकी थी । किंतु हमे यहां यह नहीं भूलना चाहिये कि हम हिन्दुत्व के उन लक्षणों का निश्चय कर रहे हैं कि जिनसे हिन्दुत्व शब्द का सर्वसाधारण में उपयोग किया जाता है । अतः हमारा निश्चय है कि अहिंदू माता पिता की कोई भी सन्तान जो

जन्म से अहिंदू पुरुष व स्त्री हैं हिंदू बन सकते हैं यदि वे हमारी मातृभूमि को अपनी मातृभूमि मान लें, किसी हिंदू से शादी कर लें, हिंदू संस्कृति को अपना लें और हिंदुस्थान को पुण्यभूः स्वीकार करें। ऐसे माता पिता की सन्तान भी अवश्य ही हिंदू होगी। यहां इतना ही कहना पर्याप्त है।

वह शुद्ध हुआ हिंदू धर्म के विविध धार्मिक सम्प्रदायों में से किसी सम्प्रदाय का अनुयायी बन सकता है। अपने धार्मिक विश्वासों के अनुसार वह सिख—जैनी—सनातनी या किसी भी मत में दीक्षा ले सकता है। तब वह धार्मिक दृष्टि से भी सम्पूर्ण हिंदू हो जायगा। किन्तु यह याद रखना चाहिए कि शुद्ध हुए हिंदू को हिन्दुत्व की प्रथम वर्णित तीनों शर्तों को अनिवार्य रूप से पूरा करना चाहिये। केवल धार्मिक विश्वासों का परिवर्त्तन उसे अहिंदू से हिंदू बनाने मे समर्थ नहीं होगा। सिस्टर निवेदिता और एनीबीसेन्ट ने हमारी मातृभूमि की जो सेवा की उसके लिए हम उनके इतने अधिक ऋणी हैं कि हम हृदय से उन्हे हिंदू स्वीकार कर चुके हैं। हिंदू जाति बहुत कोमल-हृदय और कृतज्ञ है।

हिंदुत्व के तीनों लक्षणों की परीक्षा के बाद अब हम इस निश्चय पर पहुंच गये हैं कि उनमें कोई भूल नहीं है - न उनमें अति व्याप्ति है न अव्याप्ति। अतः उन्हीं लक्षणों को हम हिन्दुत्व का निश्चय करने मे अन्तिम प्रमाण स्वीकार करते हैं।

———

८

अभी तक हिन्दुत्व की छानबीन मे केवल इतिहास और अन्य प्रमाणों का आश्रय किया है। कौन सा लक्षण हिंदुत्व के लिये अधिक उपयोगी होगा, इसका विचार नहीं किया। अब अन्त में अगर हम इस लक्षण की उपयोगिता पर भी एक नजर डाल लें तो पाठक क्षमा करें। देखना है कि हिंदुत्व का जो लक्षण हमने किया है वह हिन्दुत्व की शक्ति वृद्धि, उसके ऐक्य तथा विकास में कितना सहायक है। क्या वह लक्षण हिन्दुत्व की नींव को इतना गहन, विशाल और मज़बूत करता है कि भविष्य में उसके आधार पर खडी की गई हिन्दू राष्ट्र की इमारत शत्रु का मुक़ाबिला करने योग्य हो जायगी? अथवा वह नींव इतनी थोथी है कि उस पर इमारत खड़ा करना रेत पर इमारत खड़ा करने के बराबर है?

प्राचीन समय के राष्ट्र अपने चारों और इतनी दुर्गमे-दुर्भेद्य प्राचीर खड़ी करते थे कि सम्पूर्ण राज्य एक दुर्ग की शक्ल

अख्तियार कर लेता था। आज उनके प्राचीर धूल में मिल चुके हैं। केवल कुछ खण्डरात उनकी याद को कायम किये हुए हैं। जिन राष्ट्रों की रक्षा के लिए उन दुर्भेद्य दीवारों की रचना की गयी वे दुनियां के तख्ते से नेस्तोनाबूद हो चुके हैं। हमारे पड़ोसी राष्ट्र चीन ने सदियों की कठोर मेहनत के बाद एक विशाल दीवार चीन के चारों ओर खड़ी की थी। उसकी ऊंचाई चौड़ाई और अमेद्यता आज संसार का सातवां आश्चर्य बनी हुई है। वह संसार के अन्य आश्चर्यों की तरह आज अपने ही भार से टूट कर गिर चुकी है। परन्तु कुदरत की दीवार को देखिये। हमारे सन्तरी हिमालय पर्वत के उच्च शृङ्ग आज भी उसी तरह आस्मान को भेदते हुए खड़े हैं जिस तरह सदियों पहिले वैदिक काल में थे। इन्हीं कुदरत की दीवारों ने हमारे विशाल देश को एक सुरक्षित राजमहल या क़िला बनाया हुआ है। दूसरे देश गढ़े खोद कर उस में पानी भरते हैं और उसे खाई बोलते हैं। हमारी पुण्यभूमि की रक्षा वरुण देवता स्वयं कर रहे हैं, हमारे तीन ओर अथाह समुद्र है—वही समुद्र हमारी खाई है।

यही हमारी भौगोलिक सीमाएं हैं। हम इतनी विशाल भूमि रखते हुए भी केवल एक द्वीप का ही लाभ उठा रहे हैं।

हमारी मातृभूमि को ईश्वर का विशेष वरदान मिला हुआ है। उस की नदियां गहरी और सिंचाई के काबिल हैं। उसकी ज़मीन खेती के लिये आदर्श है। उसकी फसलें सोने की खान का काम देती हैं। हमारे देश की आवश्यकताएं कम

हैं और प्रायः सभी आवश्यकताएं कुदरत स्वयं पूर्ण कर देती है। सूर्य की किरणें इतनी स्वच्छ और गरम हैं कि गरमी कायम रखने के लिए अप्राकृतिक तरीकों के इस्तेमाल की ज़रूरत नहीं पड़ती। हिन्दुस्थान को अन्य देशों की बर्फीली चोटियों का कोई लाभ नहीं। वह उन्हें ही मुबारक रहें। हमारी गर्मी यदि कभी हमे विचलित कर देती है तो उनकी सर्दी उन्हें आधा साल मुरझाये रखती है। सर्दी से अगर मेहनत को उत्तेजना मिलती है तो हमारी गरमी हमें बिना अधिक मेहनत के ही उस का फल दे देती है। जो लाभ सर्द मुल्कों को दिन रात अनथक परिश्रम के बाद मिलता है वह हमें हाथ हिलाने भर से प्राप्त हो जाता है। हमारी तृप्ति कुदरत खुद कर देती है और वे बड़ी मेहनत के बाद भी भूखे-प्यासे रहते हैं। जिनके पास नहीं है वे उसे पाने के लिये खून-पसीना एक करने को आज़ार हैं। जिनके पास है वें उसकी तृष्णा क्यों करे? टेम्स नदी को बर्फीली चट्टानों से साफ करने में ही जिनकी मेहनत खर्च हो जाती है वे गंगा के बहते पानी में किश्ती की बहार का मज़ा क्या जानेंगे? हमे और क्या चाहिए? हमारे पास सब कुछ है। हमारे बाग़-बग़ीचों में हरियावल है, हमारे अन्न का कोष कभी खाली नहीं होता, फलों में महक भरी है, हमारे फूलों मे मीठा रस है, हमारी औषधियां रोग निवारक हैं। हमारा आसमान ऊषा की सुनहली किरणों से रंगा जाता है और हमारे वायुमण्डल में हर समय गोकुल के राग

गूंजते हैं। हम अपने को अगर ईश्वर की सब से अधिक कृपाभाजन सन्तान कहें तो कुछ भी अनुचित नहीं है।

चीन और शायद् अमेरिका के अतिरिक्त दुनिया का और कोई भी देश इतनी विशाल और समृद्ध भूमि का स्वामी होने का अभिमान नहीं कर सकता। राष्ट्रीयता की शक्ति के लिये योग्य भूमि का होना सब से बड़ी शर्त्त है, हमारी भूमि एक समृद्ध राष्ट्र के संगठन के लिये जितनी समर्थ और सम्पन्न है उतनी समृद्ध किसी भी और देश की भूमि नहीं। हम हिन्दू अपनी विशाल भूमि के प्रति जो अगाध सम्मान रखते हैं वह हम हिंदुओं को एक ही धार्मिक सूत्र में बाँधने और एक लक्ष्य के लिये संगठित उद्योग करने के लिये काफ़ी है।

हिन्दुत्व का दूसरा लक्षण हमारे राष्ट्रीय संगठन की प्रसुप्त शक्ति को और भी ऊँची सतह पर ले जाना है। चीन के अतिरिक्त और किसी भी देश मे इतनी विशाल, इतनी प्राचीन और इतनी अधिक संख्यक जाति का निवास नहीं है। अमरीका के पास भी राष्ट्रीयता के लिये उपयुक्त प्राकृतिक भौगोलिक-सीमा है किन्तु वह भी हमारी अपेक्षा कम भाग्यशाली है। मुसलमान और ईसाई कोई जाति नहीं है—वह केवल धर्म है। उन की कोई राष्ट्रीयता भी नहीं। किन्तु हम हिन्दू धर्म जाति व राष्ट्र सभी दृष्टियों से एक हैं। हमारी जनसंख्या का जो मूल्य है वह किसी और देश की जन संख्या का नहीं हो सकता।

हमारी सांस्कृतिक-एकता की कोई तुलना नहीं। इंग्लिश

और अमेरिकन भी अपने को भाई समझने लगते हैं, कारण शेक्स्पीयर दोनों का था। यदि साहित्य किसी राष्ट्र को संगठित करने में सहायक हो सकता है तो हमारे संगठन की कोई समता नहीं। कालिदास और भास के काव्य ही हमारी सम्मिलित सम्पत्ति नहीं हैं। रामायण, महाभारत और वेद भी हमारी सम्मिलित सम्पत्ति हैं। अमरीकन बच्चों के हृदय मे राष्ट्रीयता का बीज बोने के लिये उन्हें एक २०० साल पुराना गीत याद कराया जाता ह। हमारे गीतों को आयु का तो अनुमान भी लगाना कठिन है। हमारे बीते हुए काल की गणना वर्षों म नहीं कल्पो औ युगों में होती है। हमारा साहित्य इतना प्राचीन है। हमे अपनी प्राचीनता क प्रदर्शन की आवश्यकता नहीं। हमारे साहित्य में अपनी प्राचीनता के यश नहीं गाये गये।

"रघुपतेः कगतोतर कोशला। यदुपते कगता मथुरा पुरी"

आदि श्लोकों से मालूम होता है कि हमारी प्राचीनता इतनी गम्भीर हो चुकी थी कि उस की गम्भीरता को बढ़ाने की नहीं—अपितु घटाने की ज़रूरत थी। यदि यह सच है कि जिस जाति का कोई भूत नहीं उसका भविष्य भी नहीं हो सकता तो यह भी सच है कि जिस का भूत इतना शानदार था उस का भविष्य भी शानदार होगा। जिस जाति ने किसी समय यूनान और रोम को कपा देने वाले शत्रु पर विजय पाई थी उसका भविष्य कितना शक्तिशाली हो सकता है, इस की कल्पना होते ही रोमांच हो जाता है। संसार में किसी भी और जाति का भूत इतना महान्

नहीं था जितना हमारा। भविष्य भी उतना महान् नहीं होगा—यह कौन कह सकता है ?

संस्कृति के अतिरिक्त पुण्यभूमि की भावना का सूत्र भी एक जाति को संगठित करने में बहुत महत्व रखता है। पुण्यभूमि की भावना मातृभूमि की भावना से भी अधिक शक्तिशाली है। भारतीय मुसलमानों को देखिये। दिल्ली और आगरा उनकी मातृभूमि है; किंतु मक्का-मदीना की याद उनके लिये अधिक कीमती है। दिल्ली-आगरा ही नहीं सम्पूर्ण भारतवर्ष को भी वह अपने पैगम्बर के शहर की रक्षा के लिये या इस्लाम के लिये कुर्बान करने को तैय्यार होंगे। कारण, उनकी पुण्यभूः मक्का-मदीना है। यहूदियों से पूछिये; सैंकड़ों वर्ष किसी भूमि के अन्न जल से पलने के बाद भी वे उस देश की—उस भूमि को अपनाते नहीं। किसी भी समय उसे दगा देने के लिये वे तय्यार रहते हैं। उनके प्रेम का बड़ा भाग उनके देवस्थान के लिये सुरक्षित रहता है। जन्म भूमि का उनके लिये बहुत थोड़ा मूल्य है। कभी फिलस्तीन पर यहूदियों का एकाधिकार हो जाय—हम भी उनके इस स्वप्न के पूरा होने की कामना करते हैं—तो वे भी यूरोप व अमरीका के किसी भी हिस्से में रहते हुए फिलस्तीन को ही अपना सर्वस्व अर्पण करने को तय्यार रहेंगे। यहां तक कि फिलस्तीन और किसी युरोपियन देश के बीच युद्ध होने की अवस्था में वे फिलस्तीन को ही मदद देंगे और अपनी जन्मभूमि के प्रति विश्वासघात करेंगे। इतिहास ऐसे विश्वासघातों से भरा पड़ा है। धर्मयुद्ध इस

सचाई की सबसे बड़ी साक्षी हैं। धर्मभूमि की भावना इतनी शक्ति शाली हैं कि राष्ट्रीयता व जातीयता की भावनायें उसके आगे मन्द पड़ जाती हैं। भिन्न २ राष्ट्रों में रहने वाले लोग अगर वे एक ही धर्मभूमि को अपना मानते हैं तो वे, धर्म भूमि के लिये अपनी राष्ट्रीयता व जातीयता को भूल कर एक हो जायेंगे और आवश्यकता पड़ेगी तो अपने राष्ट्र को अपनी धर्मभूमि पर कुर्बान कर देंगे।

अतः आदर्श राष्ट्र वही है जहां के लोगों की धर्मभूमि और जन्मभूमि एक ही हो—भिन्न न हो, अर्थात् जहां के लोगों की पुण्यभूः उनकी मातृ-भूमि से अलहदा न हो। हिंदुस्तान ऐसा ही आदर्श राष्ट्र है। हिंदु जाति ही ऐसी जाति है जिसमें राष्ट्रीय संगठन की आदर्श सम्भावनायें मौजूद हैं। चीनियों को भी कुदरत ने इतनी आदर्श परिस्थतियां नहीं दीं। केवल अरब और फिलस्तीन की 'मातृभू' और पुण्यभूः' होने का वरदान प्राप्त हो सकता यदि वहां यहूदियों का अधिकार हो जाए। किंतु अरब संस्कृति, इतिहास और जन संख्या के लिहाज से बहुत गरीब है। फिलस्तीन में कभी ज़ियोनिस्ट लोगों का स्वप्न पूरा हो गया तो भी उसके पास संस्कृति और जन संख्या की बहुत कमी है। वह हिंदुस्तान की समता नहीं कर सकता।

इंगलैंड, फ्रांस, जर्मनी इटली, टर्की, पर्शिया, जापान अफग़ानिस्तान, आज का मिश्र, और अफ्रीका की दूसरी रियासतें, मेक्सिको पीरू चिल्ली आदि देश यद्यपि जातीयता की दृष्टि से

अधिक संगठित हैं किंतु भौगोलिक-ऐतिहासिक, संस्कृति, जन-संख्या आदि की दृष्टि से वे हिंदुस्तान से बहुत पीछे हैं। उनकी मातृभूमि के साथ पुण्य भावना भी नहीं है। यह केवल मातृभू: है पुण्यभू: नहीं। रूस और अमेरिका को हमारे जैसी भौगोलिक सम्पत्ति प्राप्त है परंतु वे जातीयता की अन्य आवश्यकताओं से से रिक्त हैं। केवल चीन को ही हिन्दुओं की तरह भौगोलिक जातीय, सांस्कृतिक और जनसंख्या की सम्पत्ति से मालामाल है। किंतु उनके पास संस्कृत जैसी समृद्ध भाषा नहीं है जो उनकी राष्ट्रीयता को संगठित कर सके। अत: उनकी अपेक्षा भी हिंदुस्थान अधिक सौभाग्यशाली है।

इस प्रकार हमने देखा कि 'हिन्दुत्व' की विशेषतायें ही राष्ट्रीयता की विशेषतायें हैं। हम इस 'हिन्दुत्व' के आधार पर विशाल राष्ट्र की —संसार की कल्पनाओं से बड़े साम्राज्य की— इमारत खड़ी कर सकते हैं। शर्त यही है कि हम अपनी खूबियों को समझें और उनका उपयोग करें। इस ज़माने में छोटे राष्ट्रों की कोई हैसियत नहीं। सम्मिलित राष्ट्रों का ही यह युग है। राष्ट्रसंघ, पान-इस्लामिज़्म, पान स्लाविज़्म और पान-इथियोपिज़्म के नाम पर छोटे-छोटे राष्ट्र मिल कर अपना विशाल राष्ट्रों में संगठन कर रहे हैं। अलहदा रह कर उनकी हस्ती खतरे में पड़ जाती है। जिन राष्ट्रों को भौगोलिक—सांस्कृतिक व जातीय सुविधाएं प्राप्त नहीं हैं वे अन्य राष्ट्रों से संयुक्त होकर उद्योग करते हैं। एक वह राष्ट्र हैं और एक हम हैं, जो राष्ट्र-निर्माण की उत्कृष्टतम

सुविधायें प्राप्त होने पर भी उन सुविधाओं की उपयोगिता नहीं समझते अथवा समझ कर भी उनका उपयोग नहीं करते। संसार की अन्य शक्तियां विभिन्न राष्ट्रीय गुट्टों में मिल कर दूसरों पर आक्रमण करने व शक्ति संचय करने की धुन में लगी हैं। हमारा रुख दुनिया से उल्टा है। हमारे सिख जैन—समाजी—सनातनी सब बने बनाये संघ को तोड़ने में अपनी शक्ति खर्च कर रहे हैं। वे न केवल भविष्य में अपने को हिन्दुत्व से अलहदा करके पृथक जातीयता क़ायम करने का आन्दोलन कर रहे हैं बल्कि सदियों के सूत्र को तोड़ने में भी प्रयत्न-शील हैं। हमारा संघ कागज़ व कलम के सूत्र से बंधा हुआ नहीं है, रक्त जन्म और संस्कृति से जुड़ा हुआ है। हमारे संघ की नींव में सदियों से एक रक्त प्रवाहित होता रहा है। हमारे बन्धन रक्त, संस्कृति और धर्म के बन्धन हैं। कोरे पैक्टों व ज़बानी जमाखर्च पर ही उनका आधार नहीं है। हमारा कर्त्तव्य उन्हे अधिक मजबूत बनाना है। हमें उचित है कि हम उस सम्बन्ध को मजबूत बनाने में जो रुकावटें पेश आती हैं उनको मिटा दें वर्ण व्यवस्था रीति रसम, मत मतान्तर या धार्मिक भेद यदि हमारे सम्बन्ध को शिथिल करते हैं तो हमें रीति—रसमों व वर्ण व्यवस्था के नियमों में परिवर्त्तन कर लेना चाहिये। हमें अन्तर्प्रान्तीय—अन्तर्जातीय विवाहों को प्रोत्साहन देना चाहिये। जहां अन्तर्जातीय विवाहों की रसम पहिले से मोजूद है, जैसे—सनातनी—सिख वैश्य

जैन आदि में वहां इन सम्बन्धों को अधिक विस्तार देना उचित है। हिन्दुओं के अल्पसंख्यक मतमतांतरों को स्मरण रखना चाहिये कि उनकी हिन्दुत्व से अलहदा होने की कोशिश जिस शाख पर बैठे उसी को काटने की कोशिश के समान विघातक है। उन्हे तो उन शृंखलाओं को और भी अधिक मज़बूत बनाना चाहिये जो उन्हें उनके मूल के साथ बांधे हुए हैं। वह शृंखलायें भाषा—संस्कृति—देश-प्रेम व्यवहार आदि हैं। उन्हें चाहिये कि वे हिन्दूरक्त को प्रत्येक हिन्दू की नसों में खुलकर प्रवाहित होने का अवसर दें—ताकि हिंदू जाति का संगठन अखण्डित और अजेय हो जाय। हिंदू जाति की शक्ति का कोई परिभाषा न रहे। वह इस्पात की तरह मज़बूत और पैनी हो जाय।

पहिले भूतकाल पर दृष्टि डालिए और फिर वर्त्तमान पर। एशिया का पान-इस्लामिज़्म, युरोप का राष्ट्रसंघ, अफ्रीका का पान-इथियोपिज़्म क्या इस बात की साक्षी नहीं हैं कि हिंदुओं का भविष्य हिंदुस्थान के भविष्य के साथ है और हिंदुस्थान का भविष्य हिंदुओं के साथ। हिन्दुओं की शक्ति ही हिन्दुस्थान को शक्तिसम्पन्न बनाएगी और हिन्दुस्थान के सशक्त होने पर ही हिन्दू सुरक्षित होंगे। हम हिन्दुस्थान के हिन्दू, मुसलमान, पारसी ईसाई और यहूदियों में ऐसी राष्ट्रीयता भरने की कोशिश कर रहे हैं कि वे अपने को सब से प्रथम भारतीय समझें, बाद में कुछ और। किन्तु भारत में राष्ट्रीयता की भावना की ज़रूरत होने के बाद भी

एक बात सदैव सत्य रहेगी—न केवल भारत में बल्कि संसार के किसी भी देश में—कि किसी भी राष्ट्र के राष्ट्रीय जीवन का सत्व उस राष्ट्र के उन नागरिकों की शक्ति होती है जिनके स्वार्थ, जिनका इतिहास और जिनकी महत्त्वाकांक्षायें उस राष्ट्र के साथ ही अनिवार्य रूप से सम्बन्धित हों। टर्की का उदाहरण लीजिए। क्रांति के बाद तरुण टर्कों ने अपनी पार्लियामेन्ट और सेना-विभाग के द्वारा सर्वियन्स, आर्मीनियन और ईसाइयों के लिये खोल दिये थे। उस का नुक़सान टर्कों को उठाना पड़ा। सर्विया से युद्ध प्रारम्भ होने पर सर्वियन फ़ौजों के अनेक जत्थों ने सर्विया से विरुद्ध लड़ाई करने से इन्कार ही नहीं किया—उसके साथ जा भी मिले। अमरीका का ही उदाहरण ले लें। जब जर्मनी से युद्ध प्रारम्भ हुआ तो अमरीका निवासी जर्मनों की जर्मनी के साथ सहानुभूति हो गयी और नीग्रोज़ अफ्रीका के साथ। अमरीका का भविष्य उसका एंग्लो-सेक्सन जाति के अमरीकनों की शक्ति ही वस्तुतः अमरीका की शक्ति है। इन्हीं की शक्ति पर अमरीका भरोसा कर सकता है। यही हाल हिंदुओं का है। हिन्दुस्थान के हिन्दु लोग ही हैं जिनका भूत—भविष्यत् केवल हिन्दुस्थान पर निर्भर है, उनकी मातृभूमि भी यही है और पितृभूः भी। अतः हिन्दुस्थान की शक्ति हिन्दुओं की शक्ति पर ही आश्रित है। अतः हिन्दु-राष्ट्रीयता को संगठित करना प्रत्येक हिन्दुस्थान निवासी का कर्त्तव्य है जिससे किसी ग़ैर हिन्दु को हिन्दुस्थान पर आक्रमण करने का साहस न हो और हिन्दुस्थान

की कौम को हिन्दुस्थान के साथ विश्वासघात कर के आक्रमणकारी के साथ मिल कर हिन्दुस्थान को पराजित करने में कामयाबी न हो। पानइज्म का प्रत्येक देश में ज़ोर बढ रहा है। उससे अपनी रक्षा करने को प्रत्येक हिन्दुस्थान निवासी को सचेत रहना चाहिये। जब तक हिन्दुस्थान की अन्य कौमें व संसार की अन्य जातियां गुट्ट बना कर कमज़ोर जातियों को पादाक्रांत करने के षड्यन्त्र कर रही हैं तब तक हिंदुओं को भी शांत नहीं बैठना चाहिये उन्हें भी अपनी पुरानी शृंखलाओं को मज़बूत करना होगा और अन्तर्जातीय भेदों को भुलाकर हिन्दुत्व के आधार पर संगठन करना पड़ेगा। जो क़ौम अपने को हिन्दू जाति से अलहदा करने का आत्मघाती प्रयत्न कर रही हैं तथा पुरानी शृंखलाओं को, जो सदियों के प्रयत्न से बनाई गयीं थी, तोड़ने की कोशिश कर रही हैं—उन्हें यह देख कर पछताना पड़ेगा कि उन्होंने अपने जातीय जीवन के बल और अपनी जातीय शक्ति के स्रोत को काट दिया है। उनकी अवस्था उन शाखाओं की सी होगी जिनकी जड़ें काटी जा चुकी हैं।

हिंदुत्व की जिन विशेषताओं का हमने जिक्र किया है उनमें से केवल एकाध विशेषता होने की हालत में ही स्पेन व पुर्त्तगाल ने संसार के राष्ट्रों में आदरणीय स्थान बना लिया है। हम हिंदू उन सब विशेषताओं के मालिक होते हुए भी कुछ नहीं कर सके।

तीस करोड़ हिंदू, जिनके पास हिंदुस्थान जैसी सम्पन्न भूमि मातृभूमि और पुण्यभूमि है, जिनका इतिहास इतना उज्वल है,

जिनके सम्बन्ध रक्त और संस्कृति से अटूट हो चुके हैं यदि एक बार अपनी शक्ति को समझ लें और राष्ट्रीय भावना लेकर संगठित हो जायं तो संसार की कोई शक्ति उनका मुकाबिला नहीं कर सकेगी। संसार का भविष्य उनकी मुट्ठी में होगा।

इतिहास में हिंदू जब कभी इतने शक्तिशाली हुए हैं कि संसार का सूत्र-संचालन उनके हाथों मे आया है तभी उनका यही ध्येय रहा है। उनका ध्येय गीता और भगवान् बुद्ध के ध्येय से पृथक नहीं है। शंकर ने बनारस के लिये सम्पूर्ण पृथ्वी के विस्तार की इच्छा की थी 'वाराणसी मेदिनी' तुकराम ने कहा था "आमुचा स्वदेश। भुवनत्रया मध्ये वासा'। उनका ध्येय तीनों लोकों का आवास था। हिंदुओं का देश हिंदुस्थान ही नहीं सम्पूर्ण विश्व होगा। हमारे देश की सीमायें विश्व की सीमायें होंगी।

प्रकाशक—विश्वनाथ एम. ए., राजपाल एण्ड संज लाहौर।
मुद्रक—आर. आर. जुनेजा सिनेमाआर्ट प्रेस, लाहौर।